जिनभाषित

वीर निर्वाण सं. 2535

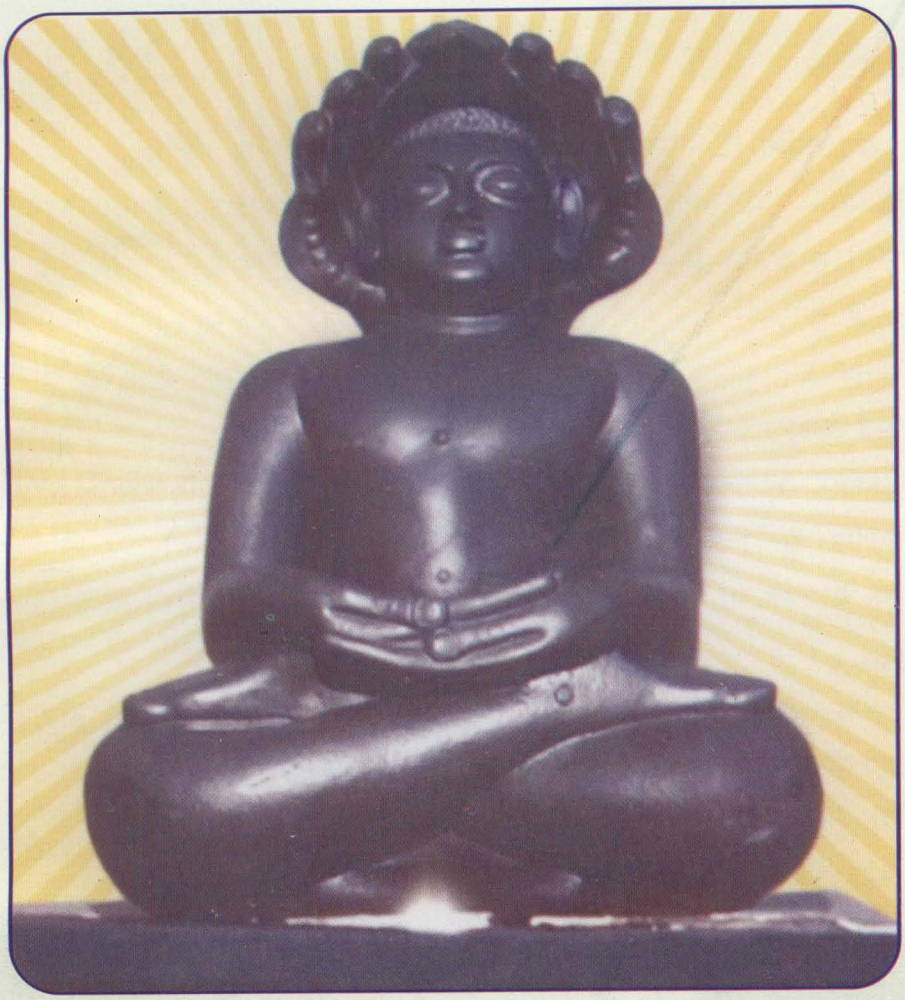

श्री १००८ अन्तरिक्ष पार्श्वनाथ भगवान्
श्री दि. जैन अतिशयक्षेत्र, नेमगिरि
जिन्तूर, जिला-परभणी (महा.)

पौष, वि.सं. 2065

दिसम्बर, 2008

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

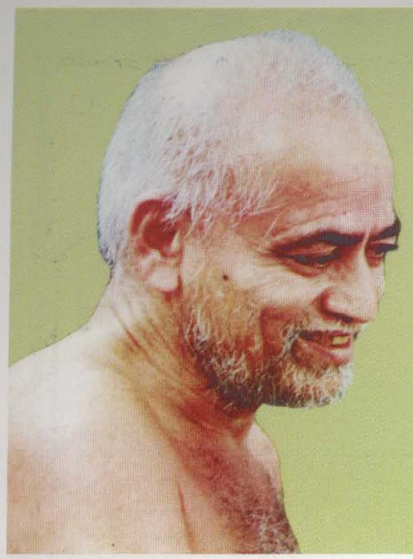

पर की दया करने से स्व की याद आती है

आचार्य श्री विद्यासागर जी

पर पर दया करना
बहिर्दृष्टि-सा --- मोह-मूढ़ता-सा---
स्व-परिचय से वंचित-सा---
अध्यात्म से दूर---
प्रायः लगता है
ऐसी एकान्त धारण से
अध्यात्म की विराधना होती है।
क्योंकि, सुनो!
स्व के साथ पर का
और
पर के साथ स्व का
ज्ञान होता ही है,
गौण-मुख्यता भले ही हो।
चन्द्र-मण्डल को देखते हैं
नभ-मण्डल भी दीखता है।
पर की दया करने से
स्व की याद आती है
और
स्व की याद ही
स्व-दया है
विलोम-रूप से भी
यही अर्थ निकलता है
या--- द--- द--- या---।
साथ ही साथ,
यह भी बात ज्ञात रहे
कि
वासना का विलास
मोह है,
दया का विकास
मोक्ष है-
एक जीवन को बुरी तरह
जलाती है---
भयंकर है, अंगार है!
एक जीवन को पूरी तरह
जिलाती है---
शुभंकर है, शृंगार है।
हाँ! हाँ!!
अधूरी दया-करुणा
मोह का अंश नहीं है
अपितु
आंशिक मोह का ध्वंस है।

मूकमाटी (पृष्ठ ३७-३९) से साभार

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

रजि. नं. UPHIN/2006/16750

दिसम्बर 2008 मासिक वर्ष 7, अङ्क 12

जिनभाषित

सम्पादक
प्रो. रतनचन्द्र जैन

◆

कार्यालय
ए/2, मानसरोवर, शाहपुरा
भोपाल- 462 039 (म.प्र.)
फोन नं. 0755-2424666

◆

सहयोगी सम्पादक
पं. मूलचन्द्र लुहाड़िया, मदनगंज किशनगढ़
पं. रतनलाल बैनाड़ा, आगरा
डॉ. शीतलचन्द्र जैन, जयपुर
डॉ. श्रेयांस कुमार जैन, बड़ौत
प्रो. वृषभ प्रसाद जैन, लखनऊ
डॉ. सुरेन्द्र जैन 'भारती', बुरहानपुर

◆

शिरोमणि संरक्षक
श्री रतनलाल कँवरलाल पाटनी
(मे. आर.के.मार्बल)
किशनगढ़ (राज.)
श्री गणेश कुमार राणा, जयपुर

◆

प्रकाशक
सर्वोदय जैन विद्यापीठ
1/205, प्रोफेसर्स कॉलोनी,
आगरा-282 002 (उ.प्र.)
फोन : 0562-2851428, 2852278

◆

सदस्यता शुल्क

शिरोमणि संरक्षक	5,00,000 रु.
परम संरक्षक	51,000 रु.
संरक्षक	5,000 रु.
आजीवन	1100 रु.
वार्षिक	150 रु.
एक प्रति	15 रु.

सदस्यता शुल्क प्रकाशक को भेजें।

अन्तस्तत्त्व

पृष्ठ

- ◆ काव्य : पर की दया करने से स्व की याद आती है — आ.पृ. 2
  : आचार्य श्री विद्यासागर जी
- ◆ मुनि श्री क्षमासागर जी-संस्मरण प्रसंग : णमोकार-मंत्र और टाफी : प्रस्तुति सरोजकुमार — आ.पृ. 3
- ◆ असहिष्णुता और आतंकवाद मानव-समाज के हित में नहीं : आ. श्री विद्यासागर जी — आ.पृ. 4
- ◆ **सम्पादकीय** : रोगों का उन्मूलन ही सुख है, रोगपीड़ा का उपचार सुख नहीं — 2
- ◆ **लेख**
  - आस्तिक-नास्तिक : पं० हीरालाल जैन कौशल — 5
  - अनेकान्त दृष्टि अपनावें : पं० जवाहर लाल भिण्डर — 8
  - गन्धोदक-माहात्म्य : डॉ० श्रेयांस कुमार जैन — 14
  - कुन्दकुन्द की दृष्टि में असद्भूत व्यवहारनय : प्रो० रतनचन्द्र जैन — 16
  - मन्दिर और मूर्ति पूजा का विज्ञान : प्राचार्य पं० निहालचन्द्र जैन — 19
  - जिनेन्द्रदर्शन एवं पूजन की विशेषता : पं० सदासुखदास काशलीवाल के लेख का शेषांश — 22
  - जैन धर्म, अहिंसा और शाकाहार, वस एक क्लिक पर : निर्मलकुमार पाटोदी — 23
- ◆ **कविता** : साधना के सिन्धु में : मनोज जैन 'मधुर' — 4
- ◆ **जिज्ञासा-समाधान** : पं. रतनलाल बैनाड़ा — 25
- ◆ **ग्रन्थ समीक्षा** :
  - वर्णी-पत्र सुधा : समीक्षक - डॉ० कमलेश कुमार जैन — 28
  - कर्म कैसे करें : समीक्षक - एस.एल. जैन — 30
- ◆ **क्षेत्र परिचय** : श्री दि. जैन अतिशय क्षेत्र नेमगिरि : पं० रतनलाल बैनाड़ा — 31
- ◆ **समाचार** — 7, 13, 15, 18, 22, 24

लेखक के विचारों से सम्पादक का सहमत होना आवश्यक नहीं है।
'जिनभाषित' से सम्बन्धित समस्त विवादों के लिये न्यायक्षेत्र भोपाल ही मान्य होगा।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सम्पादकीय

रोगों का उन्मूलन ही सुख है, रोगपीड़ा का उपचार सुख नहीं

भर्तृहरि ने वैराग्यशतक में कहा है-

तृषा शुष्यत्यास्ये पिबति सलिलं स्वादु सुरभि,
क्षुधार्तः सञ्शालीन्कवलयति शाकादिकलितान्।
प्रदीप्ते कामाग्नौ सुदृढतरमाश्लिष्यति वधूम्,
प्रतीकारो व्याधेः सुखमिति विषर्यस्यति जनः॥

अनुवाद- ''प्यास से जब मुँह सूख जाता है, तब मनुष्य शीतल, सुगन्धित जल पीकर सुख का अनुभव करता है। भूख से पीड़ित होने पर शाकादियुक्त चावल खाकर तृप्ति महसूस करता है। कामाग्नि प्रदीप्त होने पर स्त्रीरमण में आनन्दानुभूति करता है। इस प्रकार मनुष्य ने रोगजन्य पीड़ा के उपचार को सुख मान लिया है। वस्तुतः यह सुख नहीं है।

यही बात भगवती-आराधना (गाथा ४४८/पृ. ३५१-३५२) के विजयोदयाटीकाकार अपराजितसूरि द्वारा उद्धृत भोगनिर्वेजनी और शरीरनिर्वेजनी कथा के निम्नलिखित श्लोकों में कही गयी है-

एकान्तदुःखं निरयप्रतिष्ठा तिर्यक्षु देवेषु च मानुषेषु।
क्वचित्कदाचिन्नु कथञ्चिदेव सौख्यस्य संज्ञात्र शरीरिणां स्यात्॥ १॥
एकेन जन्मस्वटताऽप्रमेयं शरीरिणा दुःखमवाप्यते यत्।
अनन्तभागोऽपि न तस्य हि स्यात् सर्वं सुखं सर्वशरीरसंस्थं॥ २॥
तत्रैकजीवः सुखभागमेकं भजेत्कियन्तं जननार्णवेऽस्मिन्।
चञ्चूर्यमाणः परितो वराको वनेऽतिभीतो हरिणो यथैकः॥ ३॥
भवेष्वनन्तेषु सुखे तथापि शरीरिणैकेन समापनीये।
एकप्रसूतौ यदवाप्यते तत्कियद्भवेत्तस्य विमृश्यमाणे॥ ४॥
अत्यल्पमप्यस्य तदस्तु तावत्तद्दुःखराशौ पतितं तदीयम्।
स्यातद्रसं स्वादुरसं यथाम्बु प्राप्याम्बुदानां लवणार्णवाम्बु॥ ५॥
यच्चाप्यदः सौख्यमितीष्यतेऽत्र पूर्वोत्थदुःखप्रतिकार एषः।
विना हि दुःखात्प्रथमप्रसूतान्न लक्ष्यते किञ्चन सौख्यमत्र॥ ६॥
प्रतीयते ह्याम्बु तृषाप्रशान्त्यै क्षुन्नाशनायाशनमश्यते च।
वेश्माम्बुवातातपवारणाय गुह्यप्रतिच्छादनमम्बरं च॥ ७॥
शीतापनुत्प्रावरणं च दृष्टं शय्या च निद्रा श्रमनोदनाय।
यानानि चाध्वश्रमवारणार्थं स्नानं श्रमस्वेदमलापनुत्यै॥ ८॥
स्थानश्रमस्यौषधमासनं च दुर्गन्धनाशाय च गन्धसेवा।
वैरूप्यनाशाय च भूषणानि कलभियोगोऽरतिबाधनाय॥ ९॥
तथेह सर्वं परिचिन्त्यमानं भोगाभिधानं सुरमानुषाणाम्।
दुःखप्रतीकारनिमित्तमेव भैषज्यसेवेव रुगर्दितस्य॥ १०॥
पित्त – प्रकोपेन विदह्यमाने द्रव्याणि शीतानि निषेवमाणः।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मन्येत भोगा इति तानि योऽज्ञः कुर्वीत सोऽन्नादिषु भोगसंज्ञा॥ ११॥
यतश्च नैकान्तसुखप्रदानि द्रव्याणि तोयप्रभृतीनि लोके।
अतश्च दुःखप्रतिकारबुद्धिं तेषु प्रकुर्यान्न तु भोगसंज्ञाम्॥ १२॥
क्षुधाभिभूतस्य हि यत्सुखाय तदेव तृप्तस्य विषायतेऽन्नम्।
उष्णार्दितः काङ्क्षति यानि चेह तान्येव विद्वेषकराणि शीते॥ १३॥

अनुवाद– ''नारक, तिर्यंच, मनुष्य और देव गतियों में एकान्तरूप से दुःख ही है, सुख की अनुभूति तो क्वचित्, कदाचित्, कथंचित् ही होती है। एक जीव नाना जन्मों में भ्रमण करते हुए जो अपरिमित दुःख भोगता है, उसका अनन्तवाँ भाग भी सुख, अनादिकाल से प्राप्त किये गये सभी शरीरों में उपलब्ध नहीं होता, तब एक जन्म में जीव सुख का कितना भाग भोग सकता है? जैसे वन में एक अत्यन्त भयभीत एवं बेचारा हिरण सब ओर से सशंकित रहता है, वैसे ही जीव भी इस संसार में सदा भयभीत रहता है। जब एक प्राणी के द्वारा अनन्तभवों में प्राप्त किये गये सुख की यह स्थिति है, तब एक भव में प्राप्त होनेवाला सुख कितना होगा? यह अत्यन्त अल्प सुख भी दुःख के समुद्र में गिरकर दुःख ही हो जाता है, जैसे मेघों का मीठा जल भी लवण समुद्र में गिरकर खारा हो जाता है।

''और जीव संसार में जिसे सुख मानता है, वह वास्तव में सुख नहीं है, अपितु पूर्व में उत्पन्न हुए दुःख का प्रतीकार मात्र है। पूर्व में यदि दुःख की उत्पत्ति न हो, तो उसका निरोध करने के लिए किये गये विषयसेवन से सुख की अनुभूति नहीं हो सकती। प्यास की पीड़ा मिटाने के लिए ही पानी पिया जाता है। भूख की वेदना से छुटकारा पाने के लिए भोजन किया जाता है। हवा, पानी और धूप के कष्ट से बचने के लिए मनुष्य घर में निवास करता है। नग्न रहने से जो लज्जा उत्पन्न होती है, उससे बचने के लिए वस्त्र पहनता है। शीत की वेदना का निरोध करने के लिए चादर ओढ़ता है तथा थकावट दूर करने के लिए शय्या का उपयोग करता है। मार्ग में चलने के श्रम से बचने के लिए सवारी का सहारा लेता है। थकान, पसीना, और मल से सम्पृक्त होने पर जो अप्रिय वेदन होता है, उसके परिहार के लिए स्नान करता है। खड़े रहने से जो कष्ट होता है, उससे बचने के लिए आसनरूपी औषध ग्रहण करता है। दुर्गन्ध की पीड़ा से मुक्ति के लिए सुगन्ध का सेवन करता है। शरीर की अशोभनीयता से उत्पन्न पीड़ा के परिहार हेतु आभूषण पहनता है। अरति अर्थात् मन के ऊबने से उत्पन्न दुःख को दूर करने के लिए नृत्य-गीत आदि कलाओं का दर्शन-श्रवण करता है।

''इस प्रकार विचार करने पर ज्ञात होता है कि देव और मनुष्यों के इस विषयसेवन को जो भोग कहा जाता है, वह वास्तव में भोग नहीं है, अपितु दुःख-निरोध के लिए किया जानेवाला औषधसेवन है। जैसे रोगी व्यक्ति रोग की पीड़ा से मुक्ति पाने के लिए औषधि का सेवन करता है, वैसे ही मनुष्य क्षुधादिरोगों की वेदना से छुटकारा पाने के लिए भोजन आदि औषधि ग्रहण करता है। जो पित्त के प्रकोप से शरीर के जलने पर शीतपदार्थों के सेवन को भोग मानता है, वही अज्ञानी अन्नादि के सेवन को 'भोग' नाम से अभिहित करता है। किन्तु, अन्न, जल आदि पदार्थ एकान्तरूप से सुख नहीं देते। जो अन्न भूख से पीड़ित को सुख देता है, वही अन्न पेटभरे व्यक्ति को विष के समान लगता है। गर्मी से पीड़ित मनुष्य जिन पदार्थों की इच्छा करता है, शीत से पीड़ित मनुष्य उन्हीं से द्वेष करता है। इसलिए इन पदार्थों को दुःख का प्रतीकार करनेवाला अर्थात् क्षुधादि रोगों की पीड़ा का उपचार करनेवाला ही कहना चाहिए, 'भोग' शब्द से अभिहित नहीं करना चाहिए।''

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इन अत्यन्त मर्मस्पर्शी पद्यों के कर्त्ता आचार्य ने भोग की नयी परिभाषा प्रस्तुत की है। उन्होंने विषयसेवन को **भोग** शब्द से अभिहित करने को अनुचित बतलाया है। उनकी दृष्टि में यह भोग नहीं है, अपितु दुःख का प्रतीकार मात्र है, दूसरे शब्दों में यह क्षुधादिरोगजन्य पीड़ा का अन्न-पानदिरूप औषधियों से केवल अस्थायी उपचार करना है। इससे सिद्ध होता है कि उक्त पद्यकर्त्ता आचार्य के अनुसार आत्मसुख का अनुभव ही भोग है, जो क्षुधादिरोगजन्य पीड़ाओं के अस्थायी उपचार से नहीं, अपितु क्षुधादिरोगों के ही उन्मूलन से संभव है। क्षुधादि रोगों के उन्मूलन से जो मोक्ष-अवस्था प्राप्त होती है, वही सच्चा सुख है, वही वास्तव में भोग है। इसे ही आचार्य समन्तभद्र ने रत्नकरण्ड-श्रावकाचार में निःश्रेयस कहा है-

जन्मजरामयमरणैः शोकैर्दुःखैर्भयैश्च परिमुक्तम्।
निर्वाणं शुद्धसुखं निःश्रेयसमिष्यते नित्यम्॥ १३१॥

अनुवाद-"जन्म, जरा, रोग, मरण, शोक, दुःख और भय से रहित जो निर्वाणरूप शुद्धसुख है, वह निःश्रेयस कहलाता है।"

रतनचन्द्र जैन

साधना के सिन्धु में

मनोज मधुर

गीत के तुमको मिलेंगे ठाँव
साधना के सिंध में गोते लगाओ तो।

कलरवों में लय घुली है
गीत बिखरा तितलियों में
पवन बदली चाँद सूरज
तार सप्तक बिजलियों में।
जग उठेंगे गोपियों के गाँव
बांसुरी कान्हा सरीखी
तुम बजाओ तो।

जड़ तना फल फूल पत्तों
सहित इनको ढूढ़ लाओ
गंध सोंधी नदी पनघट
खेत की इनमें मिलाओ
चल पड़ेंगे अक्षरों के पाँव
हाथ में तुम गीत का
परचम उठाओ तो।

खनक रुनझुन गुनगुनहाठ
भ्रमर के अनुराग में है
गीत मौसम कूल पर्वत
नदी झरने बाग में हैं।
गीत ही देगा सुनहरी छाँव
होंठ पर तुम गीत की
सरगम सजाओ तो।

गीत रमते शंख वीणा
बांसुरी शहनाइयों में
गीत अंतर चेतना की
जा बसे गहराइयों में।
हों विफल हमलावरों के दाँव
गीत को तुम शीश पर
अपने बिठाओ तो।

सी. एस. १३, इन्दिरा कॉलोनी
बाग उमराव दूल्हा, भोपाल म.प्र.

खैर, खून, खाँसी, खुशी, बैर, प्रीति, पदपान।
रहिमन दाबे ना दबें, जानत सकल जहान॥ १३१॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आस्तिक-नास्तिक

पं० हीरालाल जैन 'कौशल', दिल्ली

भारत धर्मप्राण देश है। यहाँ समय-समय पर अनेक धर्मों की उत्पत्ति होती रही है। यों तो प्रथम तीर्थंकर भगवान् ऋषभदेव के समय में ही ३६३ मतों की उत्पत्ति बतलाई गई है, परन्तु भगवान् महावीर के समय में प्रचलित धर्मों को दो प्रधान श्रेणियों में रखा जा सकता है। १. वैदिक और २. अवैदिक (श्रमण)। वैदिक-वेद को मानने- वाला धर्म और वेद को न माननेवाला अवैदिक, जिसके अन्तर्गत मुख्यत: बौद्धों और जैनों को रखा जाता था। महावीर के समय भारत में वेदों का सर्वत्र प्रचार था। यत्र तत्र यूपों (याज्ञिक-स्तम्भों) की भरमार थी, तथा वेदविहित हिंसा अधर्म नहीं मानी जाती थी। लोग हिंसामयी विधि-विधानों से घबरा गये थे। उस समय महावीर स्वामी ने इस मान्यता का खण्डन कर अहिंसा का प्रचार किया। हिंसापूर्ण क्रियाकाण्ड को अधर्म बताया तथा लोगों को भी जीवन में अहिंसा के पालन की प्रेरणा दी। वेदों के प्रकाण्ड विद्वान् बालगंगाधर तिलक ने इस बात को स्वीकार किया है कि यज्ञों से हिंसा को दूर करने का श्रेय महावीर स्वामी को है। बौद्धधर्म के संस्थापक महात्मा गौतम बुद्ध भी उसी समय हुए और उन्होंने भी हिंसापूर्ण विधि-विधानों का खण्डन किया, पर वे हिंसा का पूर्ण त्याग न करा सके। फलस्वरूप आज भी श्रीलंका, वर्मा, चीन, जापान आदि बौद्ध धर्मानुयायी देश मांसाहारी हैं।

धार्मिक क्रियाकाण्डों में हिंसा का विरोध करनेवाले महावीर और गौतम बुद्ध के अनुयायियों की संख्या बढ़ने लगी। छोटे-बड़े, गरीब-अमीर तथा वैभवशाली राजागण भी उनकी छत्रच्छाया में आये और वातावरण ऐसा बदला कि धीरे-धीरे भारत से याज्ञिक हिंसा का नाम निशान ही उठ गया, पर उसमें ही धर्म माननेवाले लोग इस बात को सहन न कर सके और उन्होंने अहिंसा के विरुद्ध लोगों को भड़काना प्रारम्भ किया तथा जैन और बौद्धों को 'नास्तिक' कहकर बदनाम किया जाने लगा। उस समय **'हस्तिना पीड्यमानेऽपि न गच्छेज्जैनमन्दिरम्'** अर्थात् हाथी के पैर के नीचे कुचले जाने का अवसर आने पर भी जैनमंदिर में नहीं जाना चाहिये, जैसी बातें प्रचलित हुईं।

समय की गतिविधियों को गम्भीरता से समझने- वाले लोग यह भली भाँति जानते हैं कि प्रचार का प्रभाव अवश्य पड़ता है। प्रचार में विरोधी के विषय में अनेक असंगत और तथ्यहीन बातें कही जाती हैं, पर वे भी अपना प्रभाव डालती हैं तथा लोगों के मन में अनेक सन्देह उत्पन्न कर देती हैं। जैन व बौद्धों के विरुद्ध किया जानेवाला यह प्रचार भी व्यर्थ नहीं गया। धीरे-धीरे उनके प्रति लोगों में अश्रद्धा उत्पन्न होने लगी और कई जगह तो वह घृणा की सीमा तक पहुँच गई। उसके पश्चात् अनेक कारणों से आठवीं शताब्दी के लगभग भारत में बौद्धधर्म का ह्रास हो जानेपर विरोध में सिर्फ जैनधर्म ही रह गया। उस समय उस पर अनेक अमानुषिक अत्याचार तक किये गये तथा यत्र तत्र उसके अनुयायियों का तिरस्कार किया गया। यद्यपि जैनधर्म अपनी लोकोत्तर विशेषताओं के कारण आज भी अपना मस्तक ऊँचा किये हुए है, भारत की संस्कृति पर उसका पर्याप्त प्रभाव है। वे पुरानी बातें लोग अब भूल रहे हैं, पर कभी-कभी यत्र-तत्र वह बात दृष्टिगोचर हो जाती है। 'नास्तिक' शब्द के अर्थ को न जानकर बहुत से लोग अपनी पिछली धारणा के अनुसार जैनियों को नास्तिक ही समझते हैं और कह देते हैं। अत: आस्तिक और नास्तिक का क्या अर्थ है, यह जान लेना आवश्यक है।

व्याकरण से ही शब्दों की सिद्धि होती है। वैय्याकरणों में शाकटायन अति प्राचीन हैं। वे इस शब्द की इस प्रकार सिद्धि करते हैं- **'देष्टिकास्तिक-नास्तिक'** (३-२-९१) वृतिकार श्री अभयचंद सूरि ने इसका अर्थ किया है-**'अस्ति मतिर्यस्य आस्तिकः तद्विपरीतो नास्तिकः।'** अर्थात् परलोक, पुण्यपाप आदि को माननेवाला आस्तिक और उससे विपरीत विचारवाला नास्तिक है।

आचार्य पाणिनि जो सबसे बड़े वैय्याकरण माने जाते हैं, अपने ग्रंथ में लिखते हैं कि **'आस्तिनास्ति-दिष्टंमतिः'** (४-४-९०) कौमुदीकार भट्टोजी दीक्षित ने इसकी वृत्ति लिखी है **'तदस्त्येव परलोक इति आस्तिकः। नास्तीति मतिर्यस्य सः नास्तिकः।'** अर्थात् परलोक को माननेवाला व्यक्ति आस्तिक और न माननेवाला नास्तिक है। हेमचन्द्राचार्य ने अपने सिद्धहेमशब्दानुशासन नामक प्रसिद्ध व्याकरण-ग्रन्थ में भी यही अर्थ माना है। जैनधर्म

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

नरक, स्वर्ग तथा पाप पुण्यरूप कर्मानुसार उनमें उत्पत्ति मानता है, यह सर्वविदित है। अतः व्याकरण के अनुसार जैनधर्म आस्तिक धर्म है।

कोष (Dictionary) से शब्दों के अर्थ का ज्ञान होता है। 'शब्दस्तोमहानिधि' प्र. १८५ पू., पृष्ठ ६३४ अभिधानचिन्तामणि, काण्ड ३ श्लोक ५२६ आदि सर्व सुप्रसिद्ध कोष उपर्युक्त अर्थ को ही बताते हैं। अभिधानचिन्तामणि में नास्तिक के पर्यायवाची इस प्रकार बतलाये हैं- 'बार्हस्पत्यः, नास्तिकः, चार्वाकः, लौकायतिकः इति तन्नामानि।' अर्थात् वार्हस्पत्य, नास्तिक, चार्वाक और लौकायतिक ये चार नास्तिक के नाम हैं। इस प्रकार कोष के अनुसार जैनधर्म नास्तिक नहीं है।

किसी भी दार्शनिक विद्वान् ने जैनधर्म को नास्तिक नहीं बताया है। नास्तिक के सिद्धान्त भी जैनधर्म को मान्य नहीं। जैन शास्त्रकारों ने प्रमेयकमलमार्तण्ड, अष्टसहस्री आदि ग्रन्थों में अन्य मतों के साथ नास्तिक मत का भी सयुक्तिक और जोरदार खण्डन किया है।

यद्यपि मनुस्मृतिकार ने **'नास्तिको वेदनिन्दकः'** अर्थात् जो वेदों को नहीं मानता वह नास्तिक है, ऐसा लिखा है, पर यह उनकी अपनी कल्पना है। यदि ऐसा माना जाय तो आज मुसलमान, ईसाई, सिक्ख, पारसी, यहूदी आदि के साथ स्वयं को भी नास्तिक कहलाने से नहीं बच सकते। क्योंकि ऋक्-यजुः-साम और अथर्व इन चारों वेदों में से एक वेद माननेवाले, बाकी ३ वेदों को नहीं मानते, २ वेद माननेवाले द्विवेदी बाकी दो वेदों को नहीं मानते तथा त्रिवेदी बाकी एक वेद को नहीं मानते। वे भी नास्तिक होंगे। विभिन्न टीकाकार अलग-अलग अर्थ लगाकर दूसरे के अर्थ को स्वीकार नहीं करते। सनातनधर्मी वेदों में हिंसा बतानेवाले महीधर भाष्य को ठीक बताते हैं, पर आर्यसमाजी सायण और महीधर को नहीं मानते।

फिर वेद को न माननेवालों को नास्तिक कहने का दूसरों पर अपनी बात लादने से अधिक कोई मूल्य नहीं। जब अलग अलग धर्म हैं, तो एक के ग्रन्थों को दूसरा मान्यता की कोटि में कैसे रख सकता है।

वेद को भी ईश्वरकृत स्वीकार नहीं किया गया। आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी ने बहुत समय पहले अपनी **साहित्यसीकर** पुस्तक में इस बात का स्पष्ट विवेचन किया है। अब तो अनेक साहित्यकार इस बात को स्पष्ट कर चुके हैं।

कुछ लोग कहते हैं कि जैनधर्म परमात्मा को सृष्टिकर्त्ता नहीं मानता, इसलिये वह नास्तिक है। पर जैसा कि पहिले स्पष्ट किया जा चुका है कि परलोक न माननेवाला नास्तिक कहलाता है, ईश्वर को सृष्टिकर्ता न माननेवाला नहीं। नास्तिक शब्द यौगिक शक्ति से भी उसका वाचक नहीं है। फिर प्रमाणों से भी ईश्वर सृष्टि-कर्त्ता नहीं ठहरता। उसे सृष्टिकर्त्ता मानने पर अनेक दोषों का प्रादुर्भाव होने से उसमें ईश्वरत्व नहीं रह सकता। आप्तपरीक्षा, प्रमेय कमलमार्तण्ड, अष्टसहस्री आदि जैन-ग्रन्थों में इसका सयुक्तिक विवेचन है। इसके अतिरिक्त सांख्य दर्शन में प्रकृति और पुरुष की सत्ता स्वीकार कर सृष्टि रचना का कार्य प्रकृति द्वारा होना बताया है। मीमांसक भी ईश्वर को सृष्टिकर्त्ता नहीं मानते, पर फिर भी विद्वानों ने उनको नास्तिक नहीं लिखा, क्योंकि जैसा पहले बताया जा चुका है, इस बात का आस्तिक-नास्तिक से कोई सम्बन्ध ही नहीं है।

श्रीमद्भगवद्गीता में आया है कि-

न कर्तृत्वं न कर्माणि लोकस्य सृजति प्रभुः।
न कर्मफलसंयोगं स्वभावस्तु प्रवर्तते॥
नादत्ते कस्यचित्पापं न चैव सुकृतं विभुः।
अज्ञानेनावृतं ज्ञानं तेन मुह्यति मानवः॥

अर्थात् ईश्वर संसार के कर्तापने को या कर्मों को नहीं बनाता है और न कर्मफल के संयोग की व्यवस्था ही करता है, मात्र स्वभाव काम करता है। परमात्मा न किसी को पाप का फल देता है न पुण्य का। अज्ञान से ज्ञान ढका है, इसी से जगत् के प्राणी मोहित हो रहे हैं।

ऐसी ही मान्यता जैनधर्म की भी है। यह मानता है कि जीव अपने ही भावों से शुभाशुभ कर्म बाँधते हैं तथा स्वयं उनका फल भोगते हैं। जैनधर्म ईश्वर की सत्ता को अस्वीकार नहीं करता, बल्कि वह प्रत्येक आत्मा में ईश्वरत्व शक्ति मानता है।

इतिहास पर दृष्टि डालने से भी यही बात सिद्ध होती है। किसी भी इतिहासकार ने जैनधर्म को नास्तिक नहीं लिखा, बल्कि सुप्रसिद्ध इतिहासकारों ने इसका जोरदार खण्डन किया है। 'इतिहास तिमिरनाशक' के लेखक राजा शिवप्रसाद सितारेहिन्द ने लिखा है कि "चार्वाक का जैन से कुछ सम्बन्ध नहीं है। जैन को चार्वाक कहना

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ऐसा है, जैसा स्वामी दयानन्दजी को मुसलमान कहना।''

इस विषय में पाश्चात्य तर्कविद्या के पिता अरस्तू जैसे शान्त, विचारवान् और चिन्तक के विचार देखिये-

''ईश्वर किसी भी दृष्टि से विश्व का निर्माता नहीं है। सब अविनाशी पदार्थ पारमार्थिक हैं। ऐसा कभी नहीं होगा कि उनकी गति अवरुद्ध हो जाय। यदि हम उन्हें परमात्मा के द्वारा प्राप्त पुरस्कार मानें, तो या तो हम उसे अयोग्य न्यायाधीश या अन्यायी न्याय-कर्त्ता बना डालेंगे। यह बात परमात्मा के स्वभाव के विरुद्ध है, वह इतना महान् है कि हम भी उसका कभी आस्वाद कर सकते हैं। वह आनन्द आश्चर्यप्रद है।''

वैज्ञानिक जूलियन हक्सले कहते हैं- ''इस विश्व पर शासन करनेवाला कौन या क्या है? जहाँ तक हमारी दृष्टि जाती है, वहाँ तक हम यही देखते हैं कि विश्व का नियंत्रण स्वयं ही अपनी शक्ति से हो रहा है। यथार्थ में देश और उसके शासक की उपमा इस विश्व के विषय में लगाना मिथ्या है।''

विज्ञान सृष्टि को ईश्वर द्वारा निर्मित नहीं मानता, यह सर्वविदित है। पाश्चात्य दार्शनिक विद्वान् जिन्होंने जैनधर्म का गंभीर अध्ययन किया है, वे जैनधर्म के सिद्धान्तों की मुक्तकंठ से प्रशंसा करके इसे आत्मा की स्वतंत्रता का मार्गदर्शक आस्तिक धर्म मानते हैं।

पूर्व और पश्चिम के दर्शनों के विश्वख्यातिप्राप्त प्रकाण्ड विद्वान् पूर्व राष्ट्रपति डॉ० राधाकृष्णन, सुप्रसिद्ध साहित्यकार आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी, श्री वासुदेव-शरण अग्रवाल, श्री रामधारी सिंह दिनकर, गाँधीवादी प्रसिद्ध नेता आचार्य विनोबा भावे आदि सभी भारतीय चिन्त जैनधर्म को भारतीय संस्कृति का भूषण आस्तिक धर्म मानते हैं। राष्ट्रपिता गाँधी जी के साथी विद्वान् काका कालेलकर ने क्या 'जैनदर्शन नास्तिक दर्शन है?' नामक अपने लेख में विविध दृष्टियों से विचार करते हुये अन्त में लिखा है ''कोई मुझे आस्तिकता का नमूना बताने को कहे तो मैं प्रथम जैनधर्म का और उसके बाद में वेदों का नाम लूँगा।''

वात्सल्यरत्नाकर (द्वितीय खण्ड) से सभार

ई मेल पर अपनी जिज्ञासा भेजकर समाधान प्राप्त करें

स्वाध्यायप्रेमी महानुभावों की सुविधा के लिये अब जिज्ञासाओं का समाधान ई-मेल पर उपलब्ध हो सकेगा। अपनी जिज्ञासा jigyaasa.samadhaan@gmial.com पर भेजने का कष्ट करें।

भूल-सुधार

'जिनभाषित' सितम्बर 2005 में 'द्रव्यसंग्रह की एक अनुपलब्ध गाथा' शीर्षक से एक लेख दिया गया था, जिसमें कहा गया था कि द्रव्यसंग्रह में बजाय 58 के, 59 गाथा होनी चाहिए। क्योंकि कुछ प्राचीन पाण्डुलिपियों एवं प्रकाशित पुस्तकों में 'पयडिट्ठिदि--- गदिं जन्ति' नाम की पन्द्रहवीं गाथा उपलब्ध होती है।

उपर्युक्त विषय पर मन्थन करने पर ज्ञात हुआ कि 'पयडिट्ठिदि -----' गाथा तो वास्तव में पंचास्तिकाय ग्रन्थ की 73 वीं गाथा है। अतएव द्रव्यसंग्रह की गाथा तो 58 ही मानना चाहिए। उपर्युक्त गाथा को **उक्तं च पंचास्तिकाये,** कहकर दिया जा सकता है।

नियुक्ति

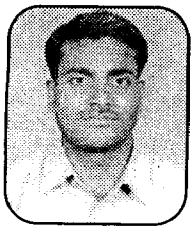

श्री वीरेन्द्र जैन एम० ए० (संस्कृत), कोटा निवासी को सर्वोदय जैन विद्यापीठ में सह व्यवस्थापक (प्रचार विभाग) नियुक्त किया गया है। यदि वे आपके नगर या ग्राम में आवें, तो कृपया नवीन सदस्य बनने का कष्ट करें। उनका मोबाइल नं. 9829423909 है।

पं० रतनलाल बैनाड़ा

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अनेकान्त दृष्टि अपनावें

पं० जवाहरलाल मोतीलाल जैन, भिण्डर

प्रश्न– वास्तविक सम्यक् अनेकान्तरूप निश्चय-व्यवहार का और मिथ्या अनेकान्तरूप निश्चय-व्यवहार का प्रतिपादन किया जा सकता है या नहीं?

उत्तर– प्रतिपादन तो किया जा सकता है, किया भी जाता है। परन्तु सम्यक् अनेकान्त-रूप निश्चय-व्यवहार द्वादशांग गर्भित होता है तथा मिथ्या अनेकान्तरूप निश्चय-व्यवहार द्वादशांग-बाह्य होता है अर्थात् बाह्य अनेकान्त, अथवा बाह्य निश्चय व्यवहार नहीं हो सकता।

प्रश्न– भूतार्थ और अभूतार्थ का प्रतिपादन किया जा सकता है या नहीं?

उत्तर– किया जा सकता है, किया जाना भी चाहिए, क्योंकि अभूतार्थ को जाने बिना भूतार्थ का निर्णय नहीं हो सकता। तथैव भूतार्थ को जाने बिना अभूतार्थ का निर्णय नहीं हो सकता। दोनों सापेक्ष शब्द हैं। आगम में प्राश्निक द्वारा प्रकथित प्रकरण को दृष्टिगत रखते हुए उत्तर में निवेदन है कि अभूतार्थ भी सर्वथा अभूतार्थ नहीं होता तथा भूतार्थ भी सर्वथा भूतार्थ नहीं होता। ये आपेक्षिक ही हैं।

प्रश्न– भूतार्थ का प्रतिपादन तो वास्तविक सम्यक् अनेकान्तरूप निश्चय-व्यवहार से और अभूतार्थ का प्रतिपादन मिथ्या अनेकान्तरूप निश्चय-व्यवहार से होना मानना सम्यक् है या मिथ्या?

उत्तर–मिथ्या है। इसका कारण यह है कि जो आगम में भूतार्थ कहा है उसका अस्तित्व नियामक अभूतार्थ है, किञ्च, अभूतार्थ भी स्यात् अभूतार्थ है– स्यात् असत्य-अर्थ ही है। यदि अभूतार्थ सर्वथा (हर प्रकार से) असत्य-असत् या मिथ्या ही होता तो निश्चय-व्यवहार-रूप, सद्भूत-असद्भूत व्यवहाररूप भूतार्थाऽभूतार्थ आदि का प्रतिपादक होने से भगवद्-देशना भी कथंचित् सत्य-प्रतिपादक तथा कथंचित् असत्य-प्रतिपादक हो जायेगी। तब आप ही बताइए कि भगवान् थोड़ा-थोड़ा तो सत्य (भूतार्थ) तथा थोड़ा-थोड़ा झूठ (अभूतार्थ) बोलते थे क्या? अतः अभूतार्थ का प्रतिपादन मिथ्या अनेकान्तरूप निश्चय-व्यवहार से है, ऐसा मानना उचित नहीं है।

प्रश्न– एक ही अभेद पदार्थ के अभेद का प्रतिपादन करनेवाले निश्चय का और उसी अभेद पदार्थ में विशेष प्रयोजनवश भेद करके भेद का प्रतिपादन करनेवाले व्यवहार का तथा दो भिन्न-भिन्न अथवा अन्य-अन्य पदार्थों में से किसी भी एक पदार्थ का तो निमित्तरूप व्यवहार से और दूसरे पदार्थ का नैमित्तिक रूप निश्चय से प्रतिपादन किया जाता है। कृपया समाधान करें कि नयचतुष्टय के द्वारा प्रतिपादित उपर्युक्त तादात्म्य सम्बन्ध का निरूपण करनेवाले उपादान-उपादेयभावरूप निश्चय-व्यवहार के निरूपण और संयोग सम्बन्ध का निरूपण करनेवाले निमित्त-नैमित्तिक भावरूप निश्चय-व्यवहार के निरूपण में से कौन से निश्चय-व्यवहार का निरूपण तो वास्तविक सम्यग् अनेकान्त स्वरूप निश्चय व्यवहार का निरूपण होने के कारण भूतार्थ का, सत्यार्थ का अथवा परमार्थ का कथन है और कौन से निश्चय-व्यवहार का निरूपण वास्तविक सम्यक् अनेकान्त स्वरूप निश्चय-व्यवहार का निरूपण नहीं होने के कारण अभूतार्थ का, असत्यार्थ का, अथवा अपरमार्थ का कथन है?

उत्तर– सर्वप्रथम तो प्राश्निक तत्त्वज्ञ मनीषी को इतना ध्यान रखना चाहिए कि निश्चय व व्यवहार के कथन आपेक्षिक होते हैं। जो किसी अपेक्षा से निश्चय का विषय होता है, वही विषय भिन्न अपेक्षा से व्यवहारनय का भी हो जाता है। एवमेव जो विषय व्यवहार का होता है वही विषय अपेक्षाविशेष से निश्चय का बन जाता है। यथा– दुनिया कहती है कि बालि (वानर) को राम (अवतार) ने मारा था (यथा-रामेण हतो बालिः), अन्यत्रापि-

सुन सुग्रीव मैं मारिहों, बालिहिं एकहिं बाण।
ब्रह्म रुद्र शरणागत भयै न उबरहिं प्राण॥ (रामचरित)

परन्तु परमार्थ से, अर्थात् वास्तव में, यानि निश्चय से, अर्थात् सत्य तो यह था कि राम ने बालि को नहीं मारा, परन्तु बालि (सुग्रीव का भाई) लक्ष्मण द्वारा मारा गया था। यथा- **आकर्णाकृष्टनिर्मुक्तनिशातसितपत्रिणा। लक्ष्मणेन शिरोऽग्राहि तालं वा बालिनः फलम्॥** (महा-पुराण ६८/४६४)

उक्त कथन में लौकिक उक्ति का लोप कर सत्य का प्ररूपण करने हेतु हम उपचरित असद्भूत व्यवहार (लक्ष्मण से बालि का मारा जाना) को भी 'वास्तविक या सत्यार्थ' संज्ञा देते हैं।

उपचरित असद्भूत व्यवहार की दृष्टि से एक

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जीव दूसरे जीव को मारता है, सुखी-दु:खी करता है, किन्तु **अनुपचरित** असद्भूत-व्यवहार-नय की दृष्टि से अपने कर्म ही जीव को सुखी-दु:खी करते हैं। समयसारकलश १६८ में कहा भी है-

'सर्वं सदैव नियतं भवति स्वकीयकर्मोदयान्मरण-जीवितदु:खसौख्यम्' अर्थात् इस जगत में जीवों के मरण, जीवन, दु:ख-सुख सब सदैव नियम से (निश्चय से) अपने कर्मोदय से होते हैं। यह कथन यद्यपि अनुपचरित असद्भूत-व्यवहार-नय की दृष्टि से है, तथापि उपचरित असद्भूत-व्यवहारनय की अपेक्षा इसको 'निश्चय' कहा गया है।

असद्भूत व्यवहारनय की अपेक्षा से सद्भूत व्यवहार को निश्चय कहा गया है-

ववहारस्स दु आदा पुग्गलकम्मं करेइ णेयविहं।
तं चेव पुणो वेयइ पुग्गलकम्मं अणेयविहं॥ ८४॥
णिच्छयणयस्स एवं आदा अप्पाणमेव हि करेदि।
वेदयदि पुणो तं चेव जाण अत्ता दु अत्ताणं॥ ८३॥
(समयसार)

व्यवहारनय का यह मत है कि आत्म अनेक प्रकार के पुद्गल कर्मों को करता है और भोगता है। निश्चयनय का यह मत है कि आत्मा (कर्मोदय व अनुदय से होने वाले) अपने भावों (परिणमन) को ही करता है व भोगता है। निश्चयनय का विषय अभेद है, अत: निश्चयनय की दृष्टि में कर्ता-कर्म का भेद सम्भव नहीं है। सद्भूत व्यवहार नय का विषय भेद है। अत: कर्त्ता-कर्म का भेद सद्भूतव्यवहार की दृष्टि से सम्भव है। आत्मा पुद्गल कर्मों को करता व भोगता है- यह असद्भूत व्यवहारनय का कथन है, क्योंकि पुद्गल कर्म और आत्मा, इन दो द्रव्यों का सम्बन्ध बताया गया है। इसलिए यहाँ पर असद्भूतव्यवहार नय की अपेक्षा सद्भूतव्यवहार के कथन को निश्चयनय का कथन कहा गया है। एवमेव शुद्ध निश्चयनय की अपेक्षा अशुद्ध निश्चयनय को व्यवहार कहा गया है-

'द्रव्यकर्माण्यचेतनानि भावकर्माणि च चेतनानि तथापि शुद्धनिश्चयनयापेक्षया अचेतनान्येव। यत: कारणादशुद्ध-निश्चयनयोऽपि शुद्धनिश्चयनयापेक्षया व्यवहार एव।' (समयसार, गाथा ११५ की टीका)

कहीं स्थूल कथन की अपेक्षा सूक्ष्म कथन को निश्चयनय का विषय कहा गया है, चाहे वहाँ सूक्ष्मकथन भी दो द्रव्य विषयक हो रहा हो, पर आपेक्षित सूक्ष्मतावश उसे निश्चय का कथन कह दिया गया है। यथा-

'व्यवहार से काल प्राणी मात्र की आयु खाता है। निश्चयनय से काल मात्र पदार्थ का रूपान्तर करता है, पर्यायान्तर करता है।' (श्रीमद् राजचन्द्र १/३५१, आलापपद्धति, प्रस्ता० पृ० २,३ शान्तिवीर दिगम्बर जैन संस्थान श्री महावीर जी)।

समयसार में भी क्वचित् दो द्रव्य विषयक कथन निश्चय का कहा गया है। यथा-**''जीवितं हि तावज्जीवानां स्वायु: कर्मोदयेनैव .... अतो जीवयामि जीव्ये चेत्य-ध्यवसायो ध्रुवमज्ञानम्॥** (समयसार/आ० ख्या० / २५१-५२) **''मरणं हि तावज्जीवानां स्वायु: कर्मक्षयेणैव ---ततो हिनस्मि हिंस्ये चेत्यध्यवसायो ध्रुवमज्ञानम्''॥** २४८-४९॥ (समयसार/आ० ख्या०)।

अर्थात् निश्चयनय से जीवों का जीवित रहना अपने आयुकर्म के उदय से ही है---अत: मैं अन्य को जीवित रखता हूँ, अन्य द्वारा में जीवित किया जाता हूँ, यह निश्चय ही अज्ञान है।

निश्चय से जीवों का मरना उनके अपने आयुकर्म के क्षय से ही होता---अत: मैं अन्य को मारता हूँ या अन्य द्वारा मैं मारा जाता हूँ यह ध्रुव- निश्चय से अज्ञान है।

नोट- इस समयसार के कथनानुसार **''परस्परोपग्रहो जीवानाम्''** तत्त्वार्थसूत्र का यह वाक्य कि एक जीव दूसरे का उपकार करता है, यह बात व्यवहार से ही सम्भव है तथा 'रावण ने लक्ष्मण को (अमोघविजया नामक शक्ति से) घायल कर दिया--- अन्त में लक्ष्मण ने रावण को मारा।' (प० पु० सर्ग ७६ श्लोक ३४), 'कृष्ण द्वारा कंस मारा गया' (हरिवंशपुराण ३६/४५), 'सगर चक्री के ६०,००० पुत्र नागेन्द्र की क्रोधाग्नि की ज्वाला द्वारा मारे गये' (पद्मपुराण ५/२५१-५२) इत्यादि ये सब वाक्य यद्यपि सत्य हैं, परन्तु दो द्रव्य (वे भी संश्लेष-संबंध-रहित) विषयक हैं, अत: यह सब सत्य उपचरित असद्भूत व्यवहार नय का विषय है और अनुपचरित असद्भूत व्यवहारनय संश्लेष-संबंध-सहित दो वस्तुओं का विषय है।

'संश्लेष-सहित-वस्तुसम्बन्धविषयोऽनुपचरित-असद्भूतव्यवहारो यथाजीवस्य शरीरमिति।' (आ. प. २२८ पृष्ठ ३५)।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अर्थात् संश्लेष सम्बन्ध सहित बाकी दो वस्तुओं को विषय करनेवाला अनुपचरित असद्भूत-व्यवहार-नय है, जैसे जीव का शरीर है। (देवसेनाचार्य)

इसलिए आयु-कर्म और जीव का चूँकि संश्लेष सम्बन्ध है, अत: संश्लेष सम्बन्ध सहित इन दोनों वस्तुओं को विषय करनेवाला नय यद्यपि देवसेनस्वामी के मतानुसार अनुपचरित असद्भूत व्यवहारनय है, परन्तु इसी नय के विषय को समयसार की आत्मख्याति में (आयु कर्म से जीव का जीवन और मरण होता है-गा० २४८ से २५२ की समयसार टीका) निश्चय का विषय कहा, क्योंकि यहाँ इस नय की तुलना उपचरित असद्भूत व्यवहार से हो रही है (एक मनुष्य द्वारा दूसरे मनुष्य का मारा जाना आदि, उपचरित असद्भूत व्यवहार है) अत: 'उपचरित असद्भूत व्यवहार की अपेक्षा अनुपचरित असद्भूत व्यवहारनय निश्चयनय है' यह सिद्ध होता है।

इस प्रकार अपने से सूक्ष्म विषय की अपेक्षा अधिक सूक्ष्मविषयवाला नय निश्चय संज्ञा को प्राप्त हो जाता है तथा उस सूक्ष्म से सूक्ष्मतर (अतिसूक्ष्म) विषय का नय सम्मुख हो तो उस सूक्ष्मतर विषय की अपेक्षा वह सूक्ष्म विषय व्यवहार कहा जाता है और सूक्ष्मतर विषय निश्चय नय का कहा जाता है। (नय ज्ञाता है वस्तु ज्ञेय है, नय विषयी है तथा ज्ञेय विषय, यह सर्वत्र ज्ञातव्य है।) फिर, जब सूक्ष्मतर विषय के सामने और अत्यन्त सूक्ष्म विषय (सूक्ष्मतम विषय) खड़ा हो तो उस सूक्ष्मतम विषय की अपेक्षा सूक्ष्मतर विषय का ज्ञाता नय भी व्यवहार नय कहा जाता है।

इस प्रकार किसी वस्तु या वस्तु-सम्बन्ध या वस्त्वंश को विषय करनेवाला नय कौन-सा है या होगा यह अपेक्षा पर आधारित है, ऐकान्तिक नहीं।

दूसरा, प्राश्निक को इस स्थल पर यह जानना चाहिए कि दो भिन्न-भिन्न द्रव्यों को विषय करनेवाले नय या विवक्षाएँ भी न्याय-शास्त्र एवं आगम में समीचीन मानी गई हैं यथा- कथंचित् जीव शरीर है, कथंचित् जीव शरीर नहीं है। **'आत्मा एव शरीरम् इति'** आत्मा ही शरीर है (राजवार्तिक ५/२४)।

''व्यवहारेण औदारिकादिशरीरमस्येति शरीरी, निश्चयेनाशरीरी।'' (गो.जीव.,जी.प्र.टी.३६६)।

कथंचित् (व्यवहारनय से) जीव शरीरी है (गो. जी. ३६६) या जीव ही शरीर है (रा.वा.५/२४/९) या जीव पुद्गल है (धवल १/१२०) (जीवो --- पोग्गलो) तथा कथंचित् जीव अशरीरी है। कथंचित् से अभिप्राय निश्चयनय की दृष्टि का है। यदि ऐसा स्याद्वाद नहीं माना जाय तो जैन न्यायशास्त्र तथा जिनागम के दूषित-मिथ्या होने का प्रसंग आयेगा।

परन्तु कोई जीव यदि व्यवहार के कथन को भी निश्चय की आँख से देखकर, निश्चय को ही मान्यता देकर तथा निश्चय से तुलना कर फिर व्यवहार को सर्वथा झूठ कहे तो जैनागम का अज्ञ ही होने से ऐसा प्राणी ऐकान्तिक दृष्टिवाला कहलाएगा, क्योंकि ''अपने अभिप्राय तैं निश्चय नय की मुख्यता करि जो कथन किया गया, ताही कौं ग्रहिकरि मिथ्यादृष्टि को धारै है।'' (मोक्षमार्ग प्रकाशक, पृ. २९१, सस्ती ग्रन्थमाला, धर्मपुरा, दिल्ली)।

अर्थात् यह (जीव) अपने अभिप्राय से निश्चयनय की मुख्यता से जो कथन किया हो, उसी को ग्रहण करके मिथ्या दृष्टि को धारण करता है। (पृ० १९८ दि० जैन स्वाध्याय मंदिर, सोनगढ़)। पूज्य श्रीमद्राजचन्द्र कहते हैं कि ''सर्व जीव हितकारी ज्ञानी पुरुष की वाणी को, किसी भी एकान्त दृष्टि को ग्रहण करके, अहितकारी अर्थ में न ले जावें, यह उपयोग निरन्तर स्मरण में रखने योग्य है।' (पृष्ठ ६८८, 'श्रीमद्राजचन्द्र', परमश्रुत प्रभावक मण्डल, राजचन्द्र आश्रम, अगास)

सर्वधर्मों/दर्शनों से जैन-दर्शन का भेद ही यह है कि जैनदर्शन स्याद्वादी (अनेकान्तवादी) है तथा शेष दर्शन अस्याद्वादी हैं। ऐसे इस स्याद्वादी दर्शन में भी एक पक्ष को ही ग्रहण करें तथा इतर पक्ष को मात्र इसलिए टाल दें कि वह व्यवहार विषयीकृत या द्रव्यद्वयविषयक है, तो नहीं चाहते हुए भी हममें एकान्त दृष्टि-ग्रहण का दूषण अवश्य प्राप्त होगा।

अध्यात्म की अपेक्षा (ध्येय तो) हमें अकेला बनना है, अत: एक मात्र चैतन्य (ध्रुव) तत्त्व ही ध्येय होना चाहिए। परन्तु ज्ञेय तो व्यवहार नय भी एवं तद्गृहीत विषय भी है। वह भी इसलिए कि व्यवहार-विषयीकृत पदार्थ या पदार्थ-सम्बन्ध या अशुद्धि या बन्ध या पर्याय या भेद या द्वैत भी अपने स्थान पर यथार्थ है। व्यवहार नय का विषय कहीं झूठ नहीं है, यह ध्यान रहे। ''**ण च ववहारणओ चप्पलओ**---'' अर्थात्-व्यवहार नय झूठ नहीं होता। (जयधवला पु०१ पृष्ठ ६ पंक्ति ३-४)

अत: **'ते उण ण दिट्ठसमओ विहयइ सच्चे व**

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अलीए वा॥' (सन्मतितर्क १/२८ तथा जयधवला १/२३७ पुरातन संस्करण ज० ध० १/२५७)।

अर्थात् अनेकान्तरूप समय के ज्ञाता पुरुष 'यह नय सच्चा है और यह नय झूठा है,' इस प्रकार का विभाग नहीं करते हैं। इसलिए सिद्धान्ताचार्य पं० फूलचन्द्र शास्त्री कहते हैं कि 'किसी एक नय का विषय उस नय के प्रतिपक्षी दूसरे नय के विषय के साथ ही सच्चा है।' (जयधवल ९/२३३ विशेषार्थ)

आचार्य कुन्दकुन्द ने जो व्यवहार को अभूतार्थ कहा है वह व्यवहार की अपेक्षा नहीं, किन्तु निश्चय की अपेक्षा से कहा है। 'व्यवहार अपने अर्थ में उतना ही सत्य है जितना कि निश्चय।' (वर्णी अभिनन्दन ग्रन्थ पृ० ३५४-५५ ले. पं० फलचन्द्र जी सिद्धान्तशास्त्री)। आचार्य पद्मनन्दि ने पं. पंचवि. ११/११ में 'व्यवहारनय पूज्य है' कहा है। स्मरण रहे कि व्यवहार से निरपेक्ष निश्चय भी मिथ्या है, ऐसी बात एक मात्र जैन शासन ही कहता है। कहा भी है-

मिथ्यासमूहो मिथ्या चेन्न मिथ्यैकान्ततास्ति नः।
निरपेक्षा नया मिथ्या सापेक्षा वस्तु तेऽर्थकृत्॥

अतः हे भव्यात्मन्! "मात्र एक कुन्दकुन्द पर समस्त आचार्यों की बलि नहीं दी जा सकती।" (स्व. पं० कैलाशचन्द्र)।

इस प्रकार उक्त तथ्यों के प्रकाश में समयसार ग्रन्थ की परमपूज्य जयसेन स्वामी रचित तात्पर्यवृत्ति की १३वीं गाथा 'ववहारोऽभूदत्थो' की व्याख्या में प्रतिपादित नयचतुष्टय रूप दो प्रकार के व्यवहार तथा दो प्रकार के निश्चय के प्रतिपादन में चारों ही नय अपने-अपने स्थान पर भूतार्थ ही हैं और वास्तविक सम्यग् अनेकान्त में वे सर्वगृहीत हैं। उन चारों नयों को नय माननेवाला सम्यग्ज्ञानी है, परन्तु जो उन चार नयों में से मात्र दो को ही भूतार्थ मानता है, शेष को कथंचित् भूतार्थ रूप से स्वीकार नहीं करता, वह एकान्त नामक मिथ्यात्व दोष से दूषित है, ऐसा समझना चाहिए। इसी तरह निमित्त-नैमित्तिक भाव को मिथ्या अनेकान्त माननेवाला तथा अविनाभाव संबंध में ही कारण-कार्य विधान एकान्ततः माननेवाला भी मिथ्यात्वी एकान्तवादी जानना चाहिए। प्रमाण के लिए आगम भरा पड़ा है।

प्रश्न– अनेकान्त वास्तव में सम्यक् अथवा मिथ्या होता है या नहीं ?

उत्तर– विद्वान् प्राश्निक के उक्त प्रश्न का उत्तर इस प्रकार है-

नयदर्पण में लिखा है कि प्रमाण, नय, एकान्त तथा अनेकान्त ये चारों सम्यक् ही होते हों, ऐसा नहीं है, मिथ्या भी होते हैं। सम्यक् प्रमाण, मिथ्या प्रमाण, सम्यक् नय, मिथ्या नय, सम्यग् अनेकान्त, मिथ्या अनेकान्त, सम्यगेकान्त तथा मिथ्या एकान्त, ये ८ रूप होते हैं--- (नयदर्पण, पृ. ४५ आदि)।

श्री भट्टाकलंकदेव राजवार्तिक में लिखते हैं- **अनेकान्तोऽपि द्विविधः–सम्यगनेकान्तो मिथ्यानेकान्त इति।** (रा.वा. १/६/७ पृष्ठ ३५)

'सम्यक् और मिथ्या के भेद से अनेकान्त दो प्रकार का होता है।' (स्व. पं० महेन्द्रकुमार जी न्यायाचार्य)।

एके वस्तु में युक्ति और आगम से अविरुद्ध अनेक विरोधी धर्मों को ग्रहण करनेवाला सम्यक् अनेकान्त है तथा वस्तु को तत् अतत् आदि स्वभाव से शून्य वचन-विलास मिथ्या अनेकान्त है। सम्यक् अनेकान्त प्रमाण कहलाता है तथा मिथ्या अनेकान्त प्रमाणाभास कहलाता है। (रा.वा.वही, पृ. ३५ एवं २८७ भाग १)।

(१) प्रत्येक पदार्थ कथंचित् अस्ति रूप (स्वरूप चतुष्टय की अपेक्षा) है तथा, वही कथंचित् नास्तिरूप (पररूपादित चतुष्टय की अपेक्षा) है।

(२) जीव कथंचित् मूर्त है (कर्मबन्ध की अपेक्षा) तथा कथंचित् अमूर्त है (स्वभाव की अपेक्षा) कहा भी है- **"आत्मा बन्धपर्यायं प्रत्येकत्वात् स्यान्मूर्तः, तथापि ज्ञानादि-स्वलक्षणापरित्यागात् स्यादमूर्तः।"** (रा० वा० २/७/२५/११७, हिन्दी पृ० ३४७)।

सर्वार्थसिद्धि में भी कहा- **कर्मबन्धपर्यायापेक्षया तदावेशात् स्यान्मूर्तः। शुद्धस्वरूपापेक्षया स्यादमूर्तः** (स० सि० २/७/प्रकरण २६९ पृ० १४४)।

अब मिथ्या अनेकान्त के भी उदाहरण देखिए-

(१) कोई कोई समन्वयवादी कहते हैं कि "मन कथंचित् प्रधान का विकार है (सांख्यदर्शन की दृष्टि से) तथा कथंचित् पुद्गल का विकार है (जैनों की दृष्टि से)," ताकि दोनों खुश हो जाएँ। ऐसा 'कथंचिद्वाद'-स्याद्वाद या अनेकान्तवाद मिथ्या अनेकान्त है।

(२) ये ही समन्वयवादी बहुत से जीवों का जातिस्मरणादि आज भी प्रत्यक्ष देखकर कहते हैं कि जीव का कथंचित् पुनर्जन्म होता है तथा किन्हीं-किन्हीं

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जीवों का पुनर्जन्म नहीं भी होता है क्योंकि सब के पुनर्जन्म का प्रत्यक्ष (चक्षुर्दृश्य) प्रमाण तो उपलब्ध है नहीं। ऐसे आधुनिक वैज्ञानिकों का अनेकान्त भी मिथ्या अनेकान्त है।

(३) **'नवकम्बलोऽयम्' (देवदत्तः)**। यहाँ **नव** शब्द के दो अर्थ होते हैं एक '९ संख्या' और दूसरा अर्थ 'नया'। नूतन (नया) विवक्षा से कहे गए 'नव' शब्द का '९ संख्या' रूप अर्थ विकल्प करके वक्ता के अभिप्राय से भिन्न अर्थ की कल्पना करना अनेकान्त नहीं, परन्तु अनेकान्ताभास (छल) है। **'नवकम्बलोऽयम् देवदत्तः'** का अर्थ वक्ता के अभिप्रायानुसार तो ऐसा था-'इसके नव अर्थात् नवीन कम्बल है।' परन्तु नव का अर्थ ९ भी होने से, वक्ता के अभिप्राय से विपरीत दूसरा अर्थ करना कि इसके पास नौ कम्बल हैं, यह छल है, अनेकान्ताभास है।

(४) आगम में लिखा है कि 'ब्रह्मचारी सुखी भवेत्' ब्रह्मचारी यानी ईश्वर में रमण करनेवाला (ब्रह्मणि रमते इति) सुखी होता है। उसका यह अर्थ करना कि- **ब्रह्म ईश्वरं चरति अत्ति इति ब्रह्मचारी** अर्थात् जो ईश्वर को खा जाय, जो ईश्वर की सत्ता ही नष्ट कर दे (चार्वाक दर्शन) वही सच्चा सुखी होता है- उसके ईश्वराधीनता नष्ट हो जाने से और अनेकान्तवाद में अनेक अर्थ सम्भव होने माने हैं ही, अतः हम दूसरा अर्थ मान लें तो क्या आपत्ति? जिसकी जैसी अपेक्षा हो वैसा अर्थ ग्रहण करे। जैन अपने अनुकूल अर्थ ग्रहण करें तथा हम चार्वाक अपने अनुकूल अर्थ को ग्रहण करें। अन्यथा जैनियों ने स्याद्वादी/अनेकान्तवादी बनकर किया ही क्या? ऐसी थोथी दलीलें देकर स्याद्वाद के प्रति अनर्थ/दुरुपयोग करना अनेकान्ताभास का अनुपालन है, सम्यक् अनेकान्त का नहीं। परन्तु समीचीन अनेकान्त (प्रमाण) द्वारा स्वीकृत चारों नय जो कि भगवद् भासित हैं वे मिथ्या या सर्वथा अभूतार्थ कैसे हो सकते हैं? कदापि नहीं।

पुनश्च, यदि विवक्षा बिना ही यों कहा जाय कि (i) जीव कथंचित् रूपी है (बंध-पर्याय की अपेक्षा) और जीव कथंचित् अरूपी है यानी बंधपर्याय की अपेक्षा ही जीव अरूपी भी है। (ii) ऐसे ही यदि यों कहें कि सिद्ध कथंचत्ि वीतरागी हैं (वर्तमान पर्याय की अपेक्षा) तथा वे ही सिद्ध कथंचित् रागी भी हैं, उसी वर्तमान सिद्ध पर्याय की अपेक्षा ही। ये दो उदाहरण ऐसे हैं, जो स्याद्वादाभास रूप हैं। अथवा यों भी कह सकते हैं कि ये अनेकान्तवादाभास रूप हैं।

यदि यों कहा जाय कि जीव तो अमूर्त ही है, अतः जीव की मूर्तता बतानेवाले नय मिथ्या हैं, सो भी ठीक नहीं है। कहा भी है-

'सर्वथाऽमूर्तस्यापि तथाऽऽत्मनः संसारविलोपः स्यात्।' (आलापपद्धति, देवसेनस्वामी) अर्थात् आत्मा को सर्वथा अमूर्त मानने पर संसार का लोप ही हो जाएगा (पृष्ठ १६६) तथैव आगे भी कहा है-

'शुद्धस्यैकान्तेनात्मनो न कर्मकलंकावलेपः सर्वथा निरंजनत्वात्। (पृ० १६६ सूत्र १४६, वही ग्रन्थ)। अर्थात् सर्वथा एकान्त से शुद्ध स्वभाव के मानने पर आत्मा सर्वथा निरञ्जन (शुद्ध-अबद्ध-निर्लेप) हो जाएगी। निरंजन हो जाने से कर्ममलरूपी कलंक का अवलेप अर्थात् कर्मबन्ध सम्भव नहीं होगा।

इसी ग्रन्थ में (सूत्र १६२ पृ० १७३ वही ग्रन्थ) विजाति असद्भूत व्यवहार उपनय की अपेक्षा जीव के भी अचेतन स्वभाव है **(जीवस्याप्यसद्भूतव्यवहारेणाऽचेतन स्वभावः)** सूत्र २९ (पृ.९ वही ग्रन्थ) में **'जीवपुद्गलयोः एकविंशतिः'** कहकर जीव के भी कथंचित् अचेतनपना तथा मूर्तपना बताया है। इसलिए असद्भूतव्यवहारनयों की कथंचित् सार्थकता सिद्ध होती है। यदि दो द्रव्यविषयी नय सर्वथा मिथ्या होते, तो जिनेन्द्र भगवान् असत्य के प्ररूपण करनेवाले कहलाते अथवा थोड़ा-थोड़ा झूठ तथा थोड़ा-थोड़ा सत्य बोलनेवाले कहलाते। परन्तु **'नान्यथावादिनो जिनाः'** जिनेन्द्र झूठ नहीं बोलते। इसी से जाना जाता है कि जयसेनी तात्पर्यवृत्ति (तेरहवीं गाथा की ता० वृ०) में कथित सर्वनय स्व स्व स्थान में समीचीन हैं। (स्मरण रहे कि निश्चय भी स्वस्थान में ही सत्य है, पर-स्थान में नहीं) तथा निश्चयनय भी प्रमाण नहीं है, प्रमाणांश है, वह भी तब तक जब तक कि व्यवहार सापेक्ष **(निरपेक्षा नया मिथ्या, सापेक्षा वस्तुतेऽर्थकृत्)** हो। एक ही नय को सर्वथा सदा मुख्य व प्रामाणिक मानकर इतर नय को सर्वथा सदा अमुख्य व अप्रामाणिक मानना, यह बुद्धि द्वादशांग-बाह्य है।

असद्भूतव्यवहार द्वारा वर्णित जीव से कर्मों का बन्ध भी कथंचित् सत्य ही है। यदि ऐसा न माना जाता तो कर्मबन्ध का सद्भाव नहीं मानने पर संसार संबंधी अनेक भयों का विचार करना केवल मूढ़ता है तथा कर्मबन्ध

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

के बिना मोक्षसुख की प्रार्थना और मोक्ष, ये दोनों भी नहीं बनते हैं। इस तरह अनेक दोष निश्चय-व्यतिरिक्त नयों के न मानने से प्रसक्त होंगे, इसीलिए जैनेन्द्रसिद्धान्तकोश (भाग २/१२६) में कहा है-

"इनके (कुन्दकुन्द के) आध्यात्मिक ग्रन्थों को पढ़कर भोलेजन उनके अभिप्राय की गहनता को स्पर्श न कर पाने के कारण अपने को एकदम शुद्ध बुद्ध व जीवन्मुक्त मानकर स्वच्छन्दाचारी बन जाते हैं, परन्तु वे तो स्वयं महान् चरित्रवन्त थे। भले ही भोले जन उसे देख न सकें, पर उन्होंने अपने शास्त्रों में सर्वत्र निश्चय व व्यवहार नयों का साथ-साथ कथन किया है। जहाँ वे व्यवहार को हेय बताते हैं, वहीं वे उसकी कथंचित् उपादेयता भी बताए बिना नहीं रहते। क्या ही अच्छा हो कि अज्ञानी जन उनके शास्त्रों को पढ़कर संकुचित एकान्तदृष्टि अपनाने की बजाय व्यापक अनेकान्तदृष्टि अपनावें।"

वात्सल्यरत्नाकर (द्वितीय खण्ड) से साभार

तालडांगरा में प्राचीन जैनमंदिर एवं पार्श्वनाथ की मूर्ति नष्ट हो रही है

संकलन- सुशील काला, धुलियान (मुर्शीदाबाद)। **अनुवादक** : ब्र. शान्तिकुमार जैन

विशेष संवाददाता, विष्णुपुर- संस्कार एवं संरक्षण के अभाव में तालडांगराके हाड़मासड़ा गाँव में प्रायः ८०० वर्ष प्राचीन जैनमंदिर और एक पार्श्वनाथ की मूर्ति अनादर के कारण नष्ट हो रही है। स्थानीय ग्रामवासियों के द्वारा की गई शिकायतों और प्रशासन को बारबार बताने पर भी कोई कार्य नहीं हो रहा है। कुछ वर्षों में ही शायद मंदिर और मूर्ति पूर्णतः नष्ट हो जायेंगी।

हाडमासड़ा के इस जैनमंदिर को देखने के लिए आज भी दूर-दूरान्त से पर्यटकों की भीड़ लगी रहती है। स्थानीय गवेषणकारियों के द्वारा बताया जाता है कि अनुमानतः १२वीं शताब्दी में इस मंदिर का निर्माण हुआ होगा। कहा जाता है कि एक अलौकिक क्षमता से सम्पन्न संन्यासी ने एक रात में ही इस मंदिर का निर्माण किया था। मंदिर का गठन देवरी की आकृति का है। माकड़ा नाम के एक विशेष पत्थर के द्वारा यह निर्मित हुआ है। पूर्वमुखी इस मंदिर की छत कई स्तरों में उपर से नीचे तक बनी हुई है।

मंदिर के पास जाने से चारों तरफ बड़े-बड़े जंगली पौधों से घिरा हुआ देखा जाता है। मन्दिर की दिवालों पर बड़ी-बड़ी फाड़ें देखी जा रही हैं। सामने का थोड़ा सा भाग बच पाया है। किसी भी समय मंदिर ध्वस्त होकर गिर सकता है। मंदिर से कुछ ही दूरी पर तालाब के किनारे पाँच फुट लम्बी पार्श्वनाथ की एक मूर्ति है। मूर्ति के चारों तरफ घास फूस का जंगल भरा पड़ा है। स्थानीय अधिवासियों से जानकारी मिली है कि उस तालाब से ही यह मूर्ति पाई गई थी। आज भी अनेक पर्यटक आते तो हैं, परन्तु संस्कार एवं संरक्षण के अभाव में सब कुछ विनाश को प्राप्त हो रहा है।

विष्णुपुर के प्रवीण टूरिष्ट गाइड अचिन्त्यकुमार वन्दोपाध्याय कहते हैं कि यह मंदिर ८०० वर्षों से भी अधिक प्राचीन है एवं मूर्ति मंदिर के अन्दर ही थी। बर्गी-आक्रमण के समय मूर्ति को किसी कारणवश किसी प्रकार से बाहर लाया गया होगा। सी.पी.एम. परिचालित हाड़मासड़ा ग्रामपंचायत के मुखिया शिवानी मुर्मु ने कहा है कि मंदिर के संस्कार के लिए आलोचना की जायेगी। तालडांगरा ग्राम के बी.डी.ओ. रतनकुमार ने कहा है कि मंदिर के संरक्षण और संस्कार के लिए आवश्यक चिन्तन-योजना बनाई जायेगी। शीघ्र हो जाय तो ही अच्छा है।

दैनिक पत्रिका 'वर्तमान' (बंगला)
कोलकाता ३० जुलाई २००८ पृष्ठ-३ से साभार

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

गन्धोदक-माहात्म्य

डॉ० श्रेयांसकुमार जैन

वीतरागी जिनबिम्ब का सातिशय महत्त्व है, उसमें प्राण प्रतिष्ठा एवं सूरिमन्त्र के द्वारा पवित्र पुण्य परमाणुओं का संचय और अप्रतिहत शक्ति का जागरण हो जाता है। इसीलिए जिनबिम्ब से मन्त्रपूत जल स्पर्श को प्राप्त हो कर विशिष्ट गुणों से युक्त हो जाता है, उसमें बिम्बगत गुणों की प्राप्ति हो जाती है, यही कारण है कि जिनबिम्ब-स्पृष्ट जल की गन्धोदक संज्ञा पड़ गयी है। इसकी आचार्यों ने विशिष्ट महिमा बतलायी है। आचार्य जिनसेन स्वामी महापुराण में लिखते हैं-

माननीया मुनीन्द्राणां जगतामेकपावनी।
साव्याद् गन्धाम्बु-धारास्मान् या स्म व्योमापगायते॥

अर्थात् जो मुनीन्द्रों के लिए भी माननीय है तथा संसार को पवित्रता प्रदान करने में अनुपम अद्वितीय है, वह आकाश गंगा के समान प्रतीत होनेवाली गन्धाम्बुधारा हमारी रक्षा करे।

गन्धोदक की अतिशयकारी महिमा का दर्शन मैनासुन्दरी के जीवन में देखने को मिला कि उसने यन्त्राभिषेक के जल से अपने कोढ़ी पति की काया कञ्चन के समान बना ली। धन्य है प्रभुतन-स्पर्शित जल, जो अनुपम है, अखण्ड कीर्तिकारक है इसकी महिमा में कहा है-

कीर्तिक्षेमकरं महाबलकरं स्वारोग्यवृद्धिकरम्,
दीर्घायुष्यकरं सदासुखकरं भूपेन्द्रसम्पत्करम्।
विश्व-व्याधिहरं विषज्वरहरं निर्वाण-लक्ष्मीकरम्।
सर्व-कर्महरं वरं तव जिन! स्नानस्य गन्धोदकम्॥

हे जिनेन्द्र! आपके अभिषेक का गन्धोदक कीर्ति, कल्याण, महाबल, निर्दोष, आरोग्य, दीर्घायु तथा नित्यसुख को करनेवाला है। हे प्रभो! चक्रवर्तियों की सम्पत्ति का कारण भी वही आपका पावन अभिषेक जल है। यह विश्व की आधि-व्याधि समूह का हर्ता, विष एवं ज्वरों का विनाशक और मोक्षलक्ष्मी का प्रदाता है। हे नाथ! अधिक कहने से क्या लाभ? यह सम्पूर्ण कर्मों का हरण करनेवाला तथा संसार में उत्तम है।

इसी प्रकार की महत्ता आचार्य माघनन्दिकृत अभिषेक पाठ में दर्शायी गई है, वहाँ कहा गया है-

मुक्ति-श्री-वनिता-करोदकमिदं पुण्यांकुरोत्पादकम्,
नागेन्द्र-त्रिदशेन्द्र-चक्रपदवी-राज्याभिषेकोदकम्।
सम्यग्ज्ञान-चरित्र-दर्शनलता-संवृद्धि-सम्पादकम्,
कीर्ति-श्री-जय साधकं तव जिन! स्नानस्य गन्धोदकम्॥

हे जिनेन्द्र देव! आपके स्नान का पवित्र जल (गन्धोदक) मोक्षरूपी लक्ष्मी के हाथों से गृहीत असाधारण जल है। वह पुण्यरूपी अंकुरो की उत्पत्ति में सहायक है। नागेन्द्र, देवेन्द्र और चक्रवर्तियों के राज्याभिषेक को सम्पन्न करानेवाला है। यह गन्धोदक सम्यग्दर्शन ज्ञान-चारित्ररूपी लता की संवृद्धि करानेवाला है तथा यश, लक्ष्मी एवं जय का साधक है।

इस प्रकार जिनेन्द्र प्रभु के तन से स्पर्शित मंत्रपूत जल की विशेषताओं को दर्शाया गया है। यह पवित्र जल वन्दन करने का विधान है। शरीर के उत्तमांग में ही इसको लगाना श्रेयस्कर है। वर्तमान में देखा जाता है कि गन्धोदक को अर्द्धशरीर में लगाते हैं। कुछ लोग तो गन्धोदक को पी जाते हैं या ऊपर छिड़कते हैं, जिससे वह जमीन पर गिरता है और पैरों में पड़ता है। इससे बहुत दोष लगता है। अतएव मैं बताना चाहता हूँ कि शास्त्रों में जो गन्धोदक ग्रहण करने की विधि है, उसी प्रकार गन्धोदक ग्रहण करें और उन्हीं अवयवों में गन्धोदक लगाना चाहिए, जिनमें लगाने का विधान शास्त्रों में पाया जाता है।

गन्धाम्भः सुमर्हदंघ्रियुग-संस्पर्शात्पवित्रीकृतम्
देवेन्द्रादि-शिरो-ललाट-नयन-न्यासोचितं मंगलम्।
तेषां स्पर्शनतस्त एव सकलाः पूजा अभोगोचितम्
भाले नेत्रयुगे च मूर्ध्नि तथा सर्वैर्जनैर्धार्यताम्॥

अरिहन्त भगवान् के चरणों में चढ़ाया हुआ शुद्ध प्रासुक जल अरिहन्तबिम्ब के चरणस्पर्श होने से पवित्र हो जाता है। अतएव देवेन्द्रादि के भी ललाट, मस्तक, नेत्र में धारण करने योग्य है, उसके स्पर्श करने मात्र से ही पूर्व में अनेक जन पवित्र हो चुके हैं। इसलिए उस गन्धोदक को भव्यजीव नित्य नयनद्वय, ललाट और मस्तक पर भक्ति से धारण करें।

आचार्य माघनन्दि ने भी गन्धोदक लगाने की विधि पर प्रकाश डाला है। गन्धोदक को ललाट और नयनयुगल में लगाने का कथन यथार्थ है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

नत्वा परीत्य निज-नेत्र-ललाटयोश्च
व्यातुक्षणेन हरतादध संचयं मे।
शुद्धोदकं जिनपते तव पादयोगाद्
भूयाद् भवातपहरं धृतमादरेण॥

जिनेन्द्र भगवान् को नमस्कार और परिक्रमा करके नेत्र और ललाट पर लगाया हुआ गन्धोदक मेरे संचित पापों का शीघ्र विनाश करे। हे जिनेन्द्र! तुम्हारे चरणों के सम्पर्क से निर्मल जल आदर से धारण करने पर संसार के कष्टों को दूर करे।

यह कथन गन्धोदक का माहात्म्य स्पष्ट बता रहा है। जिनेन्द्र शरीर संस्पर्शित जलमुक्ति का भी साधन कहा गया है-

सिद्धक्षेत्रगतीच्छयैव निटले गन्धोऽर्चितो लिप्यते।
दृष्टि-ज्ञान-विशुद्धयेऽर्चित-जलं दृष्टिद्वये षिच्यते॥

सिद्धक्षेत्र में जाने की इच्छा से ही मस्तक (ललाट) पर गन्धोदक लगाया जाता है तथा दृष्टि एवं ज्ञान की विशुद्धि के लिए (अर्थात् ज्ञानावरण एवं दर्शनावरण कर्मों के क्षय के लिए) दोनों नेत्रों (के ऊपरी भाग) पर गन्धोदक लगाया जाता है।

उपर्युक्त कथनों से स्पष्ट है कि गन्धोदक मस्तक एवं नेत्रयुगल के ऊपर लगाना चाहिये। कभी भी पीठ, नाभि आदि शरीर के किसी भी निम्न भाग में गन्धोदक न लगाया जाए, क्योंकि शरीर के अधोभाग में गन्धोदक जैसी पवित्र वस्तु का संस्पर्श दोषपूर्ण हुआ करता है। गन्धोदक को पीना नहीं चाहिए। यह अधर्म है इस कार्य से बचना चाहिए और गन्धोदक की पवित्रता बनाये रखना चाहिये।

24/32, गाँधी रोड,
बड़ौत (उ.प्र.) - 250611

डॉ० पंकज जैन, मध्यप्रदेश लोक सेवा आयोग द्वारा चयनित

विदिशा। स्थानीय सामाजिक कार्यकर्ता, विदिशा जैन समाज एवं श्री दिगम्बर जैन शीतल बिहार न्यास, विदिशा के मंत्री डॉ० पंकज जैन का चयन मध्यप्रदेश लोक सेवा आयोग द्वारा किया गया है। चयन के उपरांत डॉ० जैन की पदस्थापना प्रथमश्रेणी अधिकारी के रूप में विभागाध्यक्ष, शासकीय महिला पॉलीटेक्निक महाविद्यालय सीहोर में की गई है।

डॉ० पंकज, जैन विद्वान् पं० सागरमल जैन, विदिशा के पुत्र हैं, जो प्रारंभ से ही एक मेघावी छात्र रहे हैं, मंच-संचालन इनकी विधा है। समय-समय पर व्यक्तित्वविकास पर आपके व्याख्यान विभिन्न संस्थाओं में होते रहते हैं। गत वर्ष मध्यप्रदेश-शासन द्वारा आपके द्वारा लिखित पुस्तक 'व्यावसायिक अर्थशास्त्र कक्षा 11' का चयन कर इसे प्रकाशित किया गया था, जिसके द्वारा संपूर्ण मध्यप्रदेश के कक्षा 11 के छात्रों को अध्ययन कराया जा रहा है। डॉ० पंकज, अपनी इस सफलता का श्रेय परम पूज्य आचार्य गुरुवर विद्यासागर जी महाराज द्वारा समय-समय पर प्रदत्त आशीर्वाद को देते हैं।

अनिल जैन

पं० सागरमल जैन विदिशा का पता परिवर्तित

विदिशा। जैन विद्वान् एवं अ.भा.दि. जैन-शास्त्री- परिषद के पूर्व अध्यक्ष पं० सागरमल जैन विदिशावालों का पता परिवर्तित हो गया है, वे अब विदिशा के स्थान पर सीहोर (म.प्र.) में अपने पुत्र के साथ निवासरत हैं। उनका नवीन पता निम्न है-

द्वारा- डॉ० पंकज जैन, विभागाध्यक्ष,
शास. महिला, पॉलोटेक्निक महाविद्यालय,
भोपाल नाका, सीहोर, (म.प्र.) 466 001
मो. 98270-46409
कृपया सभी प्रकार का पत्र व्यवहार उपर्युक्त पते पर ही करें।

डॉ० पंकज जैन

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कुन्दकुन्द की दृष्टि में असद्भूत व्यवहारनय

प्रो० रतनचन्द्र जैन

अज्ञानियों में अनादिकाल से परद्रव्यों का कर्त्ता-हर्त्ता आदि होने का जो अध्यवसान या मिथ्या अभिप्राय है (समयासार/गा. ८४, ९८, २४७-२७१), उसे आचार्य कुन्दकुन्द ने-

एवं ववहारणओ पडिसिद्धो जाण णिच्छयणयेण।
णिच्छयणयासिदा पुण मुणिणो पावंति णिव्वाणं॥

स.सा./८४

इस गाथा में व्यवहारनय संज्ञा दी है और निश्चयनय के उपदेश द्वारा उसका प्रतिषेध किया है। इसलिए कुछ आधुनिक विद्वानों ने असद्भूत व्यवहारनय को अज्ञानियों का अनादिरूढ व्यवहार मान लिया है और उसे प्रमाण का अवयव मानने से इनकार कर दिया है। वे प्रतिपादित करते हैं कि असद्भूत व्यवहारनय वस्तुधर्म का निरूपण नहीं करता, मात्र एक वस्तु पर दूसरी वस्तु के धर्म का आरोप करता है। उनकी यह मान्यता 'जयपुरतत्त्वचर्चा' (२/४३६) में निम्नलिखित वक्तव्य से स्पष्ट होती है-

"अब रहा असद्भूत व्यवहारनय सो उसका विषय मात्र उपचार है। समयसार गाथा ८४ में पहले आत्मा को व्यवहारनय से पुद्गल कर्मों का कर्त्ता और भोक्ता बतलाया गया है, किन्तु यह व्यवहार असद्भूत है, क्योंकि अज्ञानियों का अनादि संसार से ऐसा प्रसिद्ध व्यवहार है, इसलिए गाथा ८५ में दूषण देते हुए निश्चयनय का अवलम्बन लेकर उसका निषेध किया गया है।"

किन्तु यह मान्यता समीचीन नहीं है। सत्य यह है कि आचार्य कुन्दकुन्द ने व्यवहारनय संज्ञा देकर जीव के परद्रव्य-विषयक कर्तृत्वहर्तृत्वादि अभिप्राय को कथंचित् सत्य सिद्ध किया है, क्योंकि 'नय' शब्द कथंचित्त्व का द्योतक है। उक्त अभिप्राय में कथंचित् अर्थात् निमित्तनैमित्तिकभाव की अपेक्षा सत्यता है, किन्तु अज्ञानी उसे सर्वथा सत्य मानते हैं, इसलिए उनके सन्दर्भ में वह मिथ्या अभिप्राय है, किन्तु ज्ञानी उसे सर्वथा सत्य न मानकर कथंचित् सत्य मानते हैं, इसलिए उनके सन्दर्भ में वह व्यवहारनय है।

'नय' शब्द मिथ्या अभिप्राय या मिथ्या कथन का वाचक नहीं हैं, अपितु सापेक्ष कथन का वाचक है। शशशृंग के समान सर्वथा असत् वस्तु नय का विषय नहीं बन सकती। नय तो प्रमाण का अंश है, अप्रमाण का नहीं। व्यवहारनय भी अज्ञान का अंश नहीं है, अपितु श्रुतज्ञान का अवयव है। आचार्य अमृतचन्द्र ने स्पष्ट शब्दों में 'जीव कर्मों से बद्ध है' ऐसा कथन करने वाले असद्भूत व्यवहारनय को '**श्रुतज्ञानावयवभूतयोर्व्यवहारनिश्चयनय-पक्षयोः**' (आ.ख्या./स.सा./१४३) इन शब्दों में श्रुतज्ञान का अवयव बतलाया है। कारण यह है कि असद्भूत-व्यवहारनय निमित्त-नैमित्तिकादि यथार्थ सम्बन्धों पर आश्रित होता है। इन सम्बन्धों के आधार पर ही उसमें एक वस्तु पर दूसरी वस्तु के धर्म का प्रयोजनवश आरोप किया जाता है। इसलिए उसकी भाषा कैसी भी हो, जिस धर्म की अपेक्षा उसका कथन होता है, उस धर्म का ही प्रतिपादन उसका प्रयोजन होता है और उसी धर्म की अपेक्षा से वह सत्य होता है। जैसे कोई ज्ञानी पुरुष जीव को पुद्गल कर्मों का कर्त्ता कहता है, तो निमित्तभाव की दृष्टि से कहता है, उपादानभाव की दृष्टि से नहीं। अतः निमित्तभाव की दृष्टि से यह कथन सत्य है। नय में प्रयुक्तभाषा का आशय तद्गत अपेक्षा पर ध्यान देने से स्पष्ट होता है।

दूसरी बात यह है कि ज्ञानियों का अभिप्राय ही नय कहलाता है, अज्ञानियों का नहीं, क्योंकि ज्ञानियों के ही अभिप्राय में कथंचित्त्व रहता है, अज्ञानियों के अभिप्राय में नहीं। इसलिए अज्ञानियों के अभिप्राय को असद्भूत व्यवहारनय नहीं कह सकते। अज्ञानियों का परद्रव्यों के कर्त्ता-हर्त्ता होने का अभिप्राय निश्चय-निरपेक्ष होता है, इसलिए उनका यह अभिप्राय असद्भूत व्यवहारनय नहीं कहला सकता, ज्ञानियों का निश्चय सापेक्ष होता है इसलिए असद्भूत व्यवहारनय संज्ञा पाता है।

असद्भूतनय की परिभाषा ही विवेकगर्भित है। परिभाषा के अनुसार निमित्त और प्रयोजन होने पर अन्यत्र प्रसिद्ध धर्म का अन्यत्र समारोप असद्भतव्यवहारनय कहलाता है-

"**अन्यत्र प्रसिद्धस्य धर्मस्यान्यत्र समारोपणमसद्-भूतव्यवहारः। असद्भूत-व्यवहार एव उपचारः।**"---
"**मुख्याभावे सति प्रयोजने निमित्ते चोपचारः प्रवर्तते।**" (आलापपद्धति)।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अतः निमित्त और प्रयोजन दृष्टि में रखकर ही अन्यत्र प्रसिद्ध धर्म का अन्यत्र समारोप करना असद्भूत व्यवहारनय है। विमूढ़तापूर्वक ऐसा करना असद्भूत व्यवहारनय नहीं है। वह अज्ञानियों का ही अनादिरूढ़ व्यवहार है।

निमित्त और प्रयोजन दृष्टि में रहने पर यह विवेक बना रहता है कि वस्तु का जिस रूप में कथन किया जा रहा है, वह उसका यथार्थ रूप नहीं है, अपितु उसके निमित्तत्वादि धर्म की अपेक्षा उसे इस रूप में कहा जा रहा है। यह विवेक होने पर ही विवक्षित कथन असद्भूत व्यवहारनय कहलाता है। किन्तु, जब ऐसा विवेक नहीं होता, अपितु वस्तु को वास्तव में वैसा ही समझा जाता है जिस रूप में उसका कथन किया जाता है, तब वह अज्ञानमय व्यवहार होता है।

इस प्रकार असद्भूत व्यवहारनय में व्यवहार को ही परमार्थ समझने की भूल नहीं की जाती, अपितु परमार्थ को परमार्थ और व्यवहार को व्यवहार ही समझा जाता है। आचार्य अमृतचन्द्र ने व्यवहार को ही परमार्थ समझ लेनेवालों को व्यवहारविमूढ़दृष्टि कहा है और उन्हें ही शुद्धात्मस्वरूप के बोध में असमर्थ बतलाया है–

व्यवहार विमूढदृष्टयः परमार्थं कलयनित नो जनाः।
तुषबोधविमुग्धबुद्धयः कलयन्तीह तुषं न तण्डुलम्॥

समयसागर-कलश २४२

"ततो ये व्यवहारमेव परमार्थबुद्ध्या चेतयन्ते ते समयसारमेव न चेतयन्ते। य एव परमार्थं परमार्थबुद्ध्या चेतयन्ते त एव समयसारं चेतयन्ते।"

आ.ख्या./समयसार/गा.४१४।

अतः व्यवहार को ही परमार्थ मान लेना अज्ञानियों का अनादिरूढ़ व्यवहार है, असद्भूत व्यवहारनय उससे सर्वथा विपरीत है। तात्पर्य यह कि निश्चयनिरपेक्ष उपचार अज्ञानियों का व्यवहार है, और निश्चयसापेक्ष उपचार असद्भूत-व्यवहारनय है।

आचार्य कुन्दकुन्द ने भी असद्भूतव्यवहारनय का यही स्वरूप माना है। यह इस बात से सिद्ध है कि उन्होंने स्वयं असद्भूतव्यवहारनय से वस्तु का निरूपण किया है और उसे सर्वज्ञ का उपदेश बतलाया है। यदि वे असद्भूतव्यवहारनय को अज्ञानियों का अनादिरूढ़ व्यवहार मानते, तो उसके द्वारा वस्तु का निरूपण न करते, क्योंकि अज्ञानपूर्ण मान्यताओं के उपदेश से शिष्य का अज्ञान पुष्ट ही हो सकता है, क्षीण नहीं। आचार्य कुन्दकुन्द ने असद्भूतव्यवहारनय से वस्तुस्वरूप के जो निरूपण किये हैं उसके उदाहरण इस प्रकार हैं–

जीवो न करेदि घडं णेव पडं णेव सेसगे दव्वे।
जोगुवओगा उप्पादगा य तेसिं हवदि कत्ता॥

समयासार/गा.१००

अर्थात् जीव न घट का कर्त्ता है, न पट का, न अन्य द्रव्यों का। उसके योग और उपयोग ही उनके उत्पादक हैं और वह योगोपयोग का कर्त्ता है।

यहाँ आचार्य कुन्दकुन्द ने जीव के योगोपयोग को घटपटादि परद्रव्यों का निमित्तरूप से कर्त्ता कहा है, जिसे आचार्य अमृतचन्द्र ने **"अनित्यौ योगोपयोगावेव तत्र निमित्तत्वेन कर्त्तारौ"** तथा जयसेनाचार्य ने **"इति परम्परया निमित्तरूपेण घटादिविषये जीवस्य कर्तृत्वं स्यात्"** इन वाक्यों से स्पष्ट किया है।

नियमसार (गा.१८) में वे केवली और श्रुतकेवली के उपदेश के अनुसार जीव का स्वरूप निश्चय और व्यवहारनय से इस प्रकार वर्णित करते हैं–

कत्ता भोत्ता आदा पोग्गलकम्मस्स होदि ववहारो।
कम्मजभावेणादा कत्ता भोत्ता दु णिच्छयदो॥

अर्थात् व्यवहारनय से जीव पुद्गलकर्मों का कर्त्ता-भोक्ता है और निश्चयनय से कर्मजनित मोहरागादि भावों का।

यहाँ आचार्य कुन्दकुन्द ने जीव को जो पुद्गलकर्मों का कर्त्ता-भोक्ता बतलाया है, वह असद्भूतव्यवहारनय है। यह उन्होंने केवली और श्रुतकेवली के उपदेश के आधार पर बतलाया है, जैसा कि ग्रन्थ के मंगलाचरण से स्पष्ट है। क्या यह उनका एवं केवली-श्रुतकेवली का अज्ञानमय अनादिरूढ़ व्यवहार है या निमित्तनैमित्तिकभाव की अपेक्षा किया गया ज्ञानमय व्यवहार? केवली, श्रुतकेवली एवं कुन्दकुन्द जैसे आचार्य के विषय में तो अज्ञानमय व्यवहार की कल्पना भी नहीं की जा सकती। अतः स्पष्ट है कि यह श्रुतज्ञान का अवयवभूत असद्भूत व्यवहारनय है।

समयसार में आचार्यश्री स्वयं 'जीव रागी, द्वेषी, मोही तथा शरीर से अभिन्न है' इस उपदेश को जिनवर का उपदेश बतलाते हैं–

ववहारस्य दरीसणमुवएसो वण्णिदो जिणवरेहिं।
जीवा एदे सव्वे अज्झवसाणादओ भावा॥४६॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अर्थात् ये देह, राग, द्वेष, मोह आदि समस्त अध्यवसानभाव जीव हैं, यह उपदेश जिनेन्द्रदेव ने व्यवहारनय से दिया है।

इस असद्भूत-व्यवहारनयात्मक उपदेश को आचार्य अमृतचन्द्र एवं आचार्य जयसेन ने उचित बतलाया है, क्योंकि इसके अभाव में मात्र निश्चयनय के उपदेश से जीव आत्मा को शरीर से सर्वथा पृथक् समझ लेगा और प्राणियों के शरीर को निःशंक होकर भस्म के समान कुचलने में हिंसा नहीं मानेगा, हिंसा न मानने से बन्ध भी नहीं मानेगा। तथा मात्र निश्चयनय के कथन को ग्रहण कर स्वयं को रागद्वेष मोह से भी सर्वथा पृथक् समझ लेगा और अपने को सर्वथा शुद्ध मानते हुए मुक्ति का प्रयत्न ही न करेगा-

''सर्वे एवैतेऽध्यवसानादयो भावा जीवा इति यद् भगवद्भिः सकलज्ञैः प्रज्ञप्तं तदभूतार्थस्यापि व्यवहारस्यापि दर्शनम्। व्यवहारो हि व्यवहारिणां म्लेच्छभाषेव म्लेच्छानां परमार्थप्रतिपादकत्वादपरमार्थोऽपि तीर्थप्रवृत्तिनिमित्तं दर्शयितुं न्याय्य एव। तमन्तरेण तु शरीराज्जीवस्य परमार्थतो भेददर्शनात् त्रसस्थावराणां भस्मन इव निःशङ्कमुपमर्दनेन हिंसाऽभावाद् भवत्येव बन्धस्याभावः। तथा रक्तो द्विष्टो विभूढो जीवो बध्यमानो मोचनीय इति रागद्वेषमोहेभ्यो जीवस्य परमार्थतो भेददर्शनेन मोक्षोपायपरिग्रहणाभा-वाद् भवत्येव मोक्षस्याभावः।'' आ. ख्या./ समयसार/गा.४६।

क्या जिनेन्द्रदेव के इस उपदेश के विषय में कहा जा सकता है कि यह उनका अज्ञानमय अनादिरूढ़ व्यवहार है? स्वप्न में भी ऐसा संभव नहीं है। अतः सिद्ध है कि असद्भूतव्यवहारनय ज्ञानमय व्यवहार है।

जाणादि पस्सदि सव्वं ववहारणएण केवली भगवं।
केवलणाणी जाणदि पस्सदि णियमेण अप्पाणं॥

नियमसार की इस १५९वीं गाथा में कुन्दकुन्ददेव ने केवली भगवान् को सर्वज्ञ कहा है, जो असद्भूत-व्यवहारनयात्मक कथन है। क्या उन्होंने यह अपनी मिथ्या धारणा व्यक्त की है? क्या यह उनका अज्ञानमय अनादि-रूढ़ व्यवहार है?

कदापि नहीं। तो आचार्य कुन्दकुन्द के इन निरूपणों से सिद्ध है कि उनकी दृष्टि में असद्भूत-व्यवहारनय अज्ञानियों का अनादिरूढ़ व्यवहार नहीं, अपितु ज्ञानमय व्यवहार है। वह श्रुतज्ञानरूप प्रमाण का अवयव है।

ए-2, शाहपुरा, भोपाल (म.प्र.)

भगवान् श्री आदिनाथ विद्यानिकेतन में प्रवेश पाएँ जीवन को उज्ज्वल बनाएँ

तीर्थधाम मङ्गलायतन में विगत पाँच वर्षों से भगवान् श्री आदिनाथ विद्यानिकेतन अपने अभूतपूर्व सफलता के साथ दिनों-दिन प्रगति कर रहा है।

इस वर्ष विद्यानिकेतन में कक्षा 8 और 9 में प्रवेश दिया जाएगा। विद्यानिकेतन में धार्मिक शिक्षा और संस्कार के साथ-साथ उच्चकोटि की लौकिक शिक्षा भी प्रदान की जाती है। अँग्रेजी माध्यम के विद्यार्थी डी.पी.एस., अलीगढ़ में और हिन्दी माध्यम के विद्यार्थी के.एल. जैन इण्टर कॉलेज, सासनी में पढ़ने भेजे जाते हैं। यदि आप अपने बच्चों का भविष्य उज्ज्वल बनाना चाहते हैं, तो शीघ्र ही फार्म मँगाकर तथा भरकर, 15 फरवरी 2009 तक तीर्थधाम मङ्गलायतन में भेजें।

अलीगढ़-आगरा मार्ग, निकट हनुमान चौकी,
सासनी-204216 (अलीगढ़)
मोबाइल- 098970-69969, 099270-13722

आचार्यश्री का 36वाँ आचार्य-पदारोहण-दिवस सम्पन्न

परम पमरपूज्य आचार्य श्री विद्यासागर जी महाराज के परम शिष्य मुनि श्री 108 अजितसागर जी महाराज एवं एलक श्री विवेकानंद सागर जी महाराज के सान्निध्य में श्री चंद्रप्रभु दिगम्बर जैन मंदिर नरवॉ (सागर) में 14 नवम्बर 2008 को आचार्य श्री विद्यासागर जी महाराज का 36वाँ आचार्य पदारोहण दिवस एवं श्री बड़े बाबा कुण्डलपुर महामण्डल विधान का आयोजन हर्षोल्लास पूर्वक सम्पन्न हुआ। विधिविधान श्री पं० विनोद सेठ शाहगढ़ एवं श्री सुनील जैन 'संचय' शास्त्री ने सम्पन्न कराया।

पूज्य मुनि श्री अजित सागर जी महाराज एवं एलक श्री विवेकानन्दसागर जी महाराज ने अपनी अमृतमयी वाणी में आचार्य श्री विद्यासागर जी महाराज के महान् व्यक्तित्त्व एवं कृतित्व पर प्रकाश डाला। रात्रि में आरती व प्रवचन हुआ।

कमलेश शाह नरवाँ

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मन्दिर और मूर्ति पूजा का विज्ञान

पं० निहालचन्द्र जैन, बीना, म.प्र.

मन्दिर कोई ऐसी चीज नहीं है, जो बाहर से किन्हीं कल्पना करनेवाले लोगों ने खड़ी कर ली हो। वह मनुष्य की चेतना से ही निकली है। परमात्मा के गहन बोध के अतिरिक्त मन्दिर नहीं बनाया जा सकता। यह हो सकता है कि परमात्मा का गहन बोध खो जाये, तो भी मन्दिर बचा रहेगा। जैसे घर में एक अतिथि-गृह बनाया, भले ही अब अतिथि न आते हों, तो भी अतिथि गृह खड़ा रहेगा। परमात्मा का बोध अनेक लोगों के अनुभव से जुड़ी एक प्रक्रिया है। मन्दिर परमात्मा का रिसेप्टिव (Receiptive) केन्द्र है, जैसे रेडियो के उपकरण के बिना रेडियो-तरंगों को पकड़ना कठिन होता है, ठीक ऐसे ही मन्दिर रिसेप्टिव उपकरण है। जैसे रेडियो तरंगे तो हर जगह मौजूद हैं, लेकिन विशेष संयोजन करके रेडियो को ट्यून करके एक विशेष आवृत्ति की रेडियो तरंगे ट्यूनिंग सिस्टम के द्वारा आग्राहक हो जाती हैं। इसी तरह मन्दिर को आग्राहक की भाँति उपयोग किया जाता है, जहाँ दिव्य-भाव को, दिव्य-अस्तित्व को ग्रहण कर पायें। मन्दिर के शिखर पर कलशारोहण उस दिव्य-भाव को प्राप्त करने के लिए एंटीना की भाँति होते हैं।

मन्दिर का गुम्बज आकाश की आकृति का होता है। यदि खुले आकाश में जब हम ॐ का उच्चारण करेंगे, तो वह विराट् आकाश में खो जायेगा। वह ॐ की ध्वनि हम पर लौटकर नहीं आयेगी, वह अनंत में खो जायेगी। हमारी ॐ की ध्वनि हम तक लौटकर आ जाए, इसलिए मन्दिर का गुम्बज निर्मित किया गया। अर्ध-गोलाकार है वह। ध्वनि के लौटकर आने से मूल-ध्वनि के साथ वह एक वर्तुल (सर्किल) का निर्माण करता है। मन्दिर का गुम्बज ॐ की मूलध्वनि को लौटाकर एक इको (गूँज) पैदा करता है और उससे वर्तुल का निर्माण होता है। इस वर्तुल का आनन्द ही अद्‌भुत है। लौटती ध्वनि के साथ एक दिव्यता का प्रवेश हमारे अन्दर होने लगता है। मन्दिर में बोले गये मंत्र जब शान्त, एकान्त स्थिति में बैठकर उच्चरित किये जाते हैं, तो जैसे ही वर्तुल निर्मित होने लगते हैं, हमारे विचार बन्द होने लगते हैं। पद्मासन या सिद्धासन में बैठी महावीर या तीर्थंकर की मूर्ति को ध्यान से देखें, वह भी वर्तुल ही निर्मित करने का एक अनोखा तरीका है। दोनों पैर जुड़े हैं और दोनों हाथ पैरों के ऊपर रखे हैं, तो पूरा शरीर वर्तुल का काम करने लगता है। स्वयं हम विचारशून्य होने लगते हैं। शरीर की विद्युत फिर कहीं बाहर नहीं निकलती। सर्किट का निर्माण होते ही ध्यान की प्रक्रिया में जाना शुरू हो जाता है। हमारे भीतर विचारों का आक्रमण, ऊर्जा के वर्तुल न बनने के कारण होता है। वर्तुल बना, कि ऊर्जा शान्त होने लगती है। मन्दिर के गुम्बज या भीतर के गर्भगृह में उपस्थित हवा में इस ध्वनि-वर्तुल के कारण अधिकतम ऊर्जा के साथ कम्पन शुरू हो जाता है।

दूसरी बात यह ध्यान देने की है कि हमारे जितने प्राचीन मन्दिर बने हैं, उनके गर्भगृह में कोई खिड़की नहीं है। एक ही दरवाजा, वह भी छोटा। बाहर से लगता है कि ये बड़े "अनहाईजीनिक" हैं, परन्तु इन मन्दिरों में स्वस्थ लोग ही आते हैं और इन मन्दिरों के भीतर कोई बीमारी नहीं आने दी जाती है। उनके भीतर ओम् या मन्त्रों की ध्वनि का जो आघात है, वह अपूर्वरूप से वहाँ के वातावरण को शुद्ध करता है। वे विशेष ध्वनियाँ शुद्धता लाती हैं। सही में अब ध्वनि का पूरा शास्त्र खो गया है। जिन्होंने ध्वनि या शब्द को ब्रह्म कहा है, उन्होंने शब्द से ब्रह्म के समान गहरी अनुभूति का प्रयोग किया होगा। सारा भारतीय संगीत, राग-रागिनियाँ, यह शब्द ब्रह्म की प्रतीत का फैलाव है। ये संगीत राग-रागिनी, मन्दिरों से ही सृजित हुई हैं। सारे नृत्य पहली बार मन्दिरों से पैदा हुए हैं। नृत्य और संगीत भक्ति का एक अभिन्न अंग है।

आज के मन्दिर साधारण मकान बनकर रह गये हैं, जहाँ रोशनी और हवा है, सारे आरामदायी उपकरण लगा दिये गये हैं, परन्तु ऐसे मन्दिरों से पाँच हजार साल का लम्बा अनुभव विदा हो गया है, जहाँ साधक के स्वास्थ्य पर कोई बुरा प्रभाव या परिणाम नहीं हुआ करता था।

ध्वनि से गहरा संबन्ध है मन्दिर की वास्तुकला का। जैनआचार्यों द्वारा प्राकृत या संस्कृत में जो आगम

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

लिखे गये, वे भले ही जनसामान्य की भाषा में नहीं थे, परन्तु वे फोनेटिक थे। उनमें ध्वनिगत विशेषताएँ थीं। हमारे शास्त्र-भाषागत कम, ध्वनिगत ज्यादा थे। ध्वनि में जो बारीक संवेदनाएँ थीं, उनका अनुवाद होते ही, भले ही वे साधारण पढ़े-लिखों के लिए समझने योग्य बन गए हों, परन्तु उनकी ध्वनिगत इम्फेसिस बदल गई है।

श्री मानतुंगाचार्य विरचित भक्तामरस्तोत्र का सम्पूर्ण काव्य पूरा ध्वनिविज्ञान का एक समर्थ शास्त्र है। इसके फोनेटिक पर कभी किसी ने ध्यान दिया कि एक अनपढ़ महिला को भी पूरा स्तोत्र सहज में ही कंठस्थ हो जाया करता था। सुनकर ही वह याद हो जाता है। संस्कृत की कठिन भाषा में होकर ध्वनिगत अत्यन्त सरल एवं गेय है। समयसार में केवल प्राकृत भाषा की गाथायें ही नहीं हैं, उसमें आचार्य कुन्दकुन्ददेव का वह आत्म-गत अनुभव समाया है, जिसे उन्होंने ध्वनि या शब्द-ब्रह्म से सृजित किया था। जो जितना फोनेटिक होता है, उसे जितनी भी बार पढ़ा जाता है, उतनी बार वह नया लगता है।

हमारी पुरानी पूजायें भाषा की अपेक्षा ध्वनि-प्रधान थीं। उनमें एक संगीत था, एक रिदिम थी, एक स्वर-लय का विज्ञान था। आधुनिक पूजाओं में वह आध्यात्म नहीं रहा। क्यों नहीं रहा? क्योंकि उनमें भाषा प्रधान हो गई। ध्वनिगत विशेषताएँ न्यून रह गईं। भावों का उद्रेक, भाषा से नहीं, ध्वनि से उठता हैं। ओम् का अब भले ही समझदार लोग अर्थ लगाने लगे हैं, परन्तु ओम् में प्रश्न अर्थ का नहीं था, असल में उसमें कोई अर्थ नहीं है, एक ध्वनिगत चोट है उसमें। बौद्ध भिक्षु एक मंत्र का बार-बार आवर्तन करता है- **ओम् मणि पद्मे हुं**। इसका क्या अर्थ है, यह सवाल महत्त्वपूर्ण नहीं है, बल्कि इसका ऊर्जा के निर्माण में कितनी उपयोगिता है, यह महत्त्वपूर्ण है। ओम् की मीनिंग नहीं, यूटिलिटी है। इसी प्रकार मन्दिर का कोई अर्थ नहीं, उपयोग है। मन्दिर जो संस्कार और कला सिखाता है, उसे हम बचपन से ''इम्बाईब'' करते हैं, उसे सहज उसी प्रकार आत्मसात् करते हैं, जैसे कि एक बालक अपने स्वर्णकार पिता के पास रोज-रोज बैठकर आभूषण बनाना स्वयं सीख लेता है। वह उसके आभूषण निर्माणकला को इम्बाईब (ग्रहण) कर लेता है। विज्ञान को सिखा सकते हैं, पढ़ा सकते हैं, परन्तु कला को सिखा नहीं सकते, उसे तो आत्मसात् करना पड़ता है।

मन्दिर के सामने लटका हुआ घंटा, उस घंटे की आवाज तथा ओम् की आवाज में एक आंतरिक सम्बन्ध है। दोनों, घंटे की आवाज और ओम् की आवाज मन्दिर को दिन भर चार्ज करती हैं। मन्दिर का विज्ञान दक्षिण भारत के मन्दिरों में अब भी विद्यमान है।

प्रत्येक मंत्र जो मंदिर में बोला जाता है, उस मंत्र से मन्दिर के भीतर विद्यमान प्रकाश का भी संबंध है। उसी के आधार पर मंदिर में बहुत मद्धिम प्रकाश किया जाता है। घी का दीपक चुना गया, जिसका प्रकाश शान्त और आँख को स्निग्धता प्रदान करता है। बिजली के तेज बल्ब जलाकर प्रकाश करना मंदिर में उपयोगी नहीं। घी का दीपक आँख की ज्योति बढ़ाता है। यह बाहर की व्यवस्था बड़े अनुभव के बाद प्रयोग में लायी गयी।

मन्दिर हमारी आत्म-संस्कृति का बहुत बड़ा स्रोत है। मन्दिर का एक वर्तुल है जो जीवन्त है। उस जीवन्त वर्तुल के कारण पूरा गाँव पवित्र और निर्दोष रहता था। कितना ही छोटा गाँव क्यों न हो, वहाँ एक मन्दिर तो होता ही था। आज तर्क और बुद्धि ने मन्दिरों के अर्थ को तोड़ दिया है। कॉलेज और स्कूल की नयी शिक्षा ने मन्दिर पर प्रश्न चिन्ह लगा दिये हैं?

मूर्ति और मूर्ति पूजा- मूर्ति को प्राण दिये बिना वह पत्थर है। प्राण-प्रतिष्ठा के बाद मूर्ति जीवन्त व्यक्तित्व हो जाती है। जहाँ जीवन है, वहाँ आकार और निराकार का मिलन है। शरीर का आकार है, पदार्थ या पुद्गल है, लेकिन चेतना का कोई आकार नहीं। जब तक मूर्ति की प्रतिष्ठा नहीं हुई, वह आकार है। प्राण प्रतिष्ठा हुई कि भक्त के लिए वह मूर्ति जीवन्त हो जाती है।

पूजा है मूर्त्त से अमूर्त की यात्रा। जैसे कोई सागर में छलांग लगाने के लिए तट का सहारा लेता है, ठीक ऐसे ही निराकार में प्रवेश के लिए मूर्ति का सहारा लिया जाता है। पूजा का अर्थ है- परमात्मा जैसा बनने की एक कोशिश। पूजा का अर्थ है जैसा परमात्मा जी रहा है, ऐसे ही जीने का भाव होना। हम अष्ट द्रव्य से अर्हन्त-प्रतिमा का पूजन करते हैं। सभी द्रव्यों को चढ़ाने का एक ही भाव है- यह संसार विदा हो जाये, जिसमें दुःख है, संताप है, भूख-प्यास है, कर्मों की अठखेलियाँ हैं और उस सुख को पा जाऊँ, जिसमें मूर्त्तिमान् विराजा है, उस शाश्वत अविनाशी सुख को, जिसे हम मोक्ष

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कहें या निर्वाण पा लेना कहें। पूजा करनेवाला परिधि पर खड़ा है, जिसके केन्द्र में परमात्मा है। जब साधक ऊपर उठता जाता है उसकी मूर्ति विदा होने लगती है। शायद इसलिए दिगम्बर मुनियों और आचार्यों के लिए मूर्त्ति-पूजन, छह आवश्यकों में नहीं हैं।

पूजा में भी ध्वनि का विज्ञान समझने जैसा है। पूजा में जैसे जैसे गहराई बढ़ती जाती है, वैसे-वैसे भीतर ध्वनि की चोट से रूपान्तरण होना शुरू हो जाता है। पूजा में ध्वनि का, संगीत व नृत्य का, कीर्तन का, सभी का उपयोग होता है। इन सभी का आधार उस मूर्ति के प्रति समर्पण भाव है। पूजा का प्रारम्भ मूर्ति से होता है और इसका अंत, पूजा की पूर्णता, स्वयं का रूपान्तरण है। यदि रूपान्तरण घटित नहीं हुआ है, तो समझिये कि अभी हमारी पूजा अधूरी है। पूजा का आध्यात्मिक अर्थ या रहस्य है, मूर्तिमान् की तरह बन जाने की एक प्रयोग-विधि। मूर्ति कह रही है-

जिस करनी से हम भये, अरिहन्त सिद्ध महान्।
वैसी करनी तुम करो, हम तुम एक समान॥

सम्पादकीय टिप्पणी

प्रस्तुत लेख में पं० निहालचन्द्र जी ने यह दर्शाने का प्रयत्न किया है कि मन्दिर, घण्टा, शिखर, घृतदीप आदि से क्या-क्या वैज्ञानिक घटनाएँ घटित होती हैं। किन्तु, उन्होंने यह नहीं बतलाया कि इन वैज्ञानिक घटनाओं के घटित होने के प्रयोग किस देश में, किन वैज्ञानिकों ने किये हैं और उनके सफल होने पर किन-किन देशों में किन-किन धर्मावलम्बियों के द्वारा ये वैज्ञानिक शैलीवाले मंदिर बनवाये गये हैं? क्योंकि वैज्ञानिक प्रयोगों से सिद्ध निष्कर्ष सार्वजनिक हो जाते हैं, किसी एक देश या धर्म तक सीमित नहीं रहते। पं० निहालचन्द्र जी ने मंदिर के शिखर-कलश को एण्टिना की उपमा दी है। यहाँ यह जिज्ञासा स्वाभाविक है कि उस एण्टिना के माध्यम से, जो सन्देश या शुभपरिणामोत्पादक तरंगें मन्दिर में भक्तों के पास आती हैं, वे कहाँ से टेलिकास्ट होती हैं? और क्या जैनेतर मन्दिरों, मस्जिदों और चर्चों में बने हुए शिखर (मीनारें, गुम्बद) भी वैसी ही एण्टिनाओं का काम करते हैं, और वैसे ही सन्देश या शुभपरिणामजनक तरंगों का ग्रहण-सम्प्रेषण करते हैं?

जैन मन्दिरों का जो शास्त्रोक्त मनोवैज्ञानिक आधार है, उसकी मनोवैज्ञानिकता निर्विवाद है। वह यह है कि जिनायतन में जो वीतरागता के प्रतीक जिनबिम्ब प्रतिष्ठित किये जाते हैं, उनके दर्शन सम्यग्दर्शन की प्राप्ति में निमित्त बनते हैं, उनकी पूजाभक्ति में उपयोग केन्द्रित करने से परिणाम शुभ होते हैं, जिनसे अशुभ कर्मों का संवर एवं निर्जरा तथा शुभकर्मों का आस्रवबन्ध होता है। यह प्रक्रिया शुद्धोपयोग में सहायक होती है, अतएव परम्परया मोक्ष की साधक बनती है। इस प्रक्रिया में न कोई वर्तुल बनते हैं, न कोई गूँज होती है, न मन्दिर का शिखर-कलश एण्टिना का काम करता है। सम्पूर्ण मनोवैज्ञानिक प्रक्रिया एक जिनबिम्ब के द्वारा ही घटित होती है, भले ही वह श्रवणबेल-गोल की तरह खुले आकाश में स्थित हो।

आज कल यज्ञ-हवन में भी वैज्ञानिकता बतलायी जाने लगी है। जैनेतर पण्डितों के समान तेरहपन्थी दिगम्बर जैन पण्डित भी कहने लगे हैं कि यज्ञों से उत्पन्न होनेवाले धुएँ से वातावरण शुद्ध होता है। यदि ऐसा होता तो पृथ्वी पर बढ़ते हुए पॉल्यूशन को रोकने के लिए, दुनिया के सभी देश यज्ञ करवाने लगते। फिर दिगम्बरजैन तेरापन्थ आम्नाय में तो भगवान् की पूजा के लिए दीप और धूप जलाने का भी निषेध है, तब यज्ञ-हवन के अनिषेध का तो प्रश्न ही नहीं उठता। पूजा के लिए अग्नि-प्रज्वलन में जो विज्ञान है, वह केवल सचित्तपूजा और जीवहिंसा का विज्ञान है।

तेरापंथ-आम्नाय में जिनपूजा में जिन द्रव्यों के प्रयोग का निषेध किया गया है, उनका वर्णन पं० नेमिचन्द्रकृत भट्टारकीय ग्रन्थ **सूर्यप्रकाश** (श्लोक ६६-७०) में है। (देखिये, पं० जुगलकिशोर मुख्तारकृत **सूर्यप्रकाश-परीक्षा**/ पृ.४६-६०)।

मन्दिर, घण्टा, शिखर, यज्ञ-हवन, घृतदीप आदि में जो भी वैज्ञानिकता बतलायी जाने लगी है, वह प्रज्ञावानों को तभी ग्राह्य हो सकती है, जब प्रयोगों के द्वारा उसे सिद्ध करके दिखाया जाय।

रतनचन्द्र जैन

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जिनेन्द्र-दर्शन एवं पूजन की विशेषता

पं० सदासुखदास जी काशलीवाल

'जिनभाषित' के अक्टूबर 2008 के अंक में प्रेस की गलती से इस लेख का शेषांश मुद्रित नहीं हो पाया था। उसे इस अंक में मुद्रित किया जा रहा है।

सम्पादक

ऐसा आनन्द उत्पन्न हो जाता है कि वह निकटभव्य जीव भक्ति से भगवान् के आगे-सामने के स्थान पर अर्घ्यसामग्री रख देता है। उस भक्त को अन्य कुछ भी वांछा नहीं होती है। ऐसा यह भक्ति करने का मार्ग अनादिकाल से चला आ रहा है, नवीन नहीं हुआ है।

जो समस्त ही आरम्भ-परिग्रह आदि के त्यागी होकर अपने आत्मीक परमात्मरस में लीन हैं, उन्हें इस दर्शन-पूजन आदि में प्रधानता नहीं रहती है। वे अपने परमात्मस्वरूप को जानकर, पर सम्बन्धी आराध्य-आराधकरूप भेदबुद्धि छोड़कर निज परमात्मस्वरूप आत्मानुभव में लीन रहते हैं। इस प्रकार स्थापना निक्षेप का प्रकरण पाकर यह कथन किया है।

'अर्थप्रकाशिका' से साभार

मुनि श्री समतासागर जी का रजत दीक्षा दिन महोत्सव

वाशिम- आचार्य श्री विद्यासागर जी महाराज के परमशिष्य कवि हृदय ओजस्वी वक्ता मुनिश्री समतासागर जी महाराज का १८ सितम्बर को दीक्षा लेने के २५ वर्ष पूर्ण होने के उपलक्ष्य में दीक्षादिन रजत महोत्सव बड़ी धूमधाम से एवं भक्तिपूर्ण वातावरण में मनाया गया, वाशिम नगरी के इतिहास में नयी कड़ी जोड़नेवाले दीक्षादिन समारोह में समूचे देश के भक्तों का जनसैलाव वाशिम नगरी में उमड़ पड़ा।

रजत दीक्षादिन महोत्सव के उपलक्ष्य में १७ से २१ सितम्बर, तक राष्ट्रीय जैन-पाठशाला बाल-संस्कार-सम्मेलन आयोजित किया गया। जिसमें विभिन्न प्रांतों के २ हजार बालक बालिकायें शामिल हुये। बाल संस्कार सम्मेलन में बालक-बालिकाओं को देश के विद्वानों का मार्गदर्शन, समाजसेवियों का प्रोत्साहन, मुनिसंघ की शुभाशीष प्रेरणा प्राप्त हुई। पाठशाला में विभिन्न स्पर्धाओं का आयोजन किया गया, बच्चों ने जैन कथायें, गीत, भजन तथा सामाजिक स्थितियों पर आधारित नैतिक, राष्ट्रीय कार्यक्रम प्रस्तुत किये।

बाहर से पधारे पाठशालाओं के सभी बच्चों ने जिनवाणी की प्रभावना के लिए नगर में गाजे-बाजे के साथ पथसंचलन किया।

सम्मेलन में २७ पाठशालाओं ने भाग लिया जिनमें से १७ पाठशालाओं के नन्हेंमुन्ने कलाकारों ने प्रस्तुतियाँ दी, तथा १० पाठशालाओं के प्रतिनिधियों ने उपस्थित रहकर पाठशाला सामग्री प्राप्त की। ५ दिवसीय बाल-संस्कार सम्मेलन में मध्यप्रदेश के अशोक नगर निवासी चौधरी रमेशचंद्रजी द्वारा प्रथम पुरस्कार ५०००रु. जिले के कारंजा लाड़ की पाठशाला को, द्वितीय पुरस्कार ३००० रु. वाशिम की पाठशाला को एवं तृतीय पुरस्कार २१००रु. परवारपुरा, इतवारी नागपुर की पाठशाला को प्रदान किये गये। विजेता को शील्ड भी प्रदान की गई है। बैतूल की श्रीमती सुधा जैन द्वारा सभी शामिल पाठशालाओं को स्वर्ण शील्ड, उ.प्र. ललितपुर के लकी बुक डिपो के संचालक सोमचंद जैन द्वारा सभी को कॉपी, पेन, वाशिम के जितेंद्र गोधा के परिवार द्वारा हर पाठशाला को एक एक सूटकेस, मानिकचंद्र रामेशचंद बज परिवार वाशिम द्वारा हर पाठशाला को ५०० रुपये नगद पुरस्कार और हर पाठशाला के अध्यापक को सम्मानपत्र एवं अध्यापन हेतु ऐलक निश्चयसागर महाराज द्वारा लिखित बालबोध भाग १, २, ३, ४ किताब प्रदान की गयीं। निर्णायक मण्डल के रूप में पंडिण्त सुदर्शनजी पिंडरई, प्राचार्य आर.के. जैन (विदिशा), प्राचार्य सुदर्शन टोपरे अंजनगांव सुर्जी ने कामकाज देखा। सम्मेलन में विद्वान् नेमिचंद जैन शमशाबाद, पडिण्त रमेशचंद भारिल्ल गंजबासोदा तथा परिक्षकों का भावपूर्ण सत्कार किया गया।

रवि बज

श्रीवर्णीजयंती-समारोह-२००८ सम्पन्न

शिक्षा जगत के ज्योर्तिविद एवं जैनत्व की प्रतिमूर्ति, आगमप्रेरक संत गणेश प्रसाद जी वर्णी महाराज की १३५ वीं जन्म जयंति जबलपुर के हृदय स्थल कमानिया गेट पर पूज्य आचार्यश्री १०८ विशुद्धसागर जी महाराज के संसघ सान्निध्य में बड़े ही जन समुदाय के बीच भव्यतापूर्वक मनाई गई।

ब्रजेश चंदेरिया
श्री वर्णी दिगम्बर जैन गुरुकुल
जबलपुर

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जैनधर्म, अहिंसा और शाकाहार बस एक क्लिक पर

निर्मलकुमार पटोदी

इण्टरनेट पर किसी भी मुद्दे की जानकारी सर्च करते वक्त सूचनाओं का एक पूरा खजाना मिल जाता है। दुनिया में यह सूचनाओं का सबसे बड़ा स्रोत है। इसके अन्दर 30 से 50 मिलियन लोगों तक पहुँचने की ताकत है। इन्दौर के श्री अर्पित पाटोदी पिछले दस साल से इस आधुनिक विधा से जुड़े हुए हैं। इन्हें विचार आया कि आत्मसाधक जैनाचार्य श्री विद्यासागर जी महाराज की मानव-हितैषी, जीवदया, अहिंसा, शाकाहार आदि भावनाओं पर पूरे देश में समाज, व्यक्ति और संस्थाओं द्वारा जो रचनात्मक कार्य किये जा रहे हैं, उन्हें इंटरनेट के सशक्त और प्रभावी माध्यम से पूरे विश्व को अवगत कराना चाहिये। अपने इस विचार को संकल्प, सूझबूझ और लगन से दयोदय चेरिटेबल फाउण्डेशन ट्रस्ट, इन्दौर की तरफ से दिन-रात मेहनत करके तपोनिधि विद्यासागर जी के नाम से WWW.vidyasagar.net वेबसाइट बनाना प्रारंभ किया। उनके जुझारूपन का सुफल आज सबके सामने है। लगभग 450 पृष्ठों की, वह भी राष्ट्रभाषा हिंदी में बनायी गयी दिगम्बर जैनधर्म की सर्वाधिक देखी जाने वाली शिखर पर आसीन वेबसाइट हो चुकी है। अब तक इस नि:शुल्क अनुपम वेबसाइट से सवा लाख से अधिक इंटरनेट यूजर्स लाभ उठा चुके हैं।

वेबसाइट में जहाँ एक ओर जैनधर्म के विभिन्न पहलुओं का समावेश है, वहीं दूसरी ओर शाकाहार, अहिंसा, जैन ध्वज, प्रतीक चिह्न, कैलेण्डर, तिथि दर्पण व पर्व संबंधी अनेक प्रकार की जानकारियाँ हैं। चित्र आदि सामग्री को कोई भी डाउन लोड कर सकता है।

दुनिया में जैनियों से ज्यादा करोड़ों की संख्या शाकाहारियों की है। अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर सक्रिय संस्था रहे रामा, हरे कृष्णा इस्कान के अनुयायी शुद्ध शाकाहारी हैं। इसी इस्कान की पहल से पूरी दुनिया में, यहाँ तक कि हवाई यात्रा में भी जैनभोजन मिलने लगा है। जैन मील (Jain meal) शब्द इस्कान के कारण विश्वव्यापी हो चुका है। सभी शाकाहारियों को शाकाहारी भोजन विश्व और भारत के प्रमुख शहरों के रेस्टोरेंट में जहाँ मिल रहा है, उस स्थान और उससे सम्पर्क की जानकारी एक बड़ी आवश्यकता थी। इस समस्या के निदान के लिये श्री अर्पित पाटोदी द्वारा भरपूर कोशिश करने पर आज इस वेबसाइट पर न्यूयार्क, वाशिंगटन, लास वेगास, लास एंजिल्स, केलिफोर्निया, ओस्लो, सेन फ्रांसिस्को, लंदन, पेरिस, रोम, फ्लोरेंस, ब्रुसेल्स, बर्लिन, ज्यूरिख, स्टॉकहोम, कोपनेहेगन, प्राग, विएना, दुबई, हाँगकाँग, सिंगापुर, बैंकाक, आस्ट्रेलिया, न्यूजीलैंड, दक्षिण अफ्रिका, मारिशस आदि में स्थित शाकाहारी रेस्टोरेंट, जो प्रमुखता से भारतीयों द्वारा संचालित हैं, की नाम-पते, सम्पर्कसहित जानकारी इस वेबसाइट में है। इसी प्रकार भारत के 26 प्रमुख शहरों के उपलब्ध शाकाहारी रेस्टोरेंट की सूचि से वेबसाइट की महत्ता स्वत: दिन-दूनी, रात-चौगुनी बढ़ती जा रही है।

दिगम्बर जैन श्रद्धालुओं में भगवान् के नियमित दर्शन-पूजन करने की परम्परा है। धर्मात्माओं की भारत और विश्व के जैनमंदिरों में दर्शन करने की श्रद्धा-भक्ति का ध्यान रखते हुए वेबसाइट में पूरी दुनिया के दिगम्बर जैन मंदिरों की सूची, नाम-पता, सम्पर्क सहित प्रस्तुत की जा रही है। जैसे-जैसे विभिन्न माध्यमों से रेस्टोरेंट और मंदिरों की जानकारी मिल रही है, सूची को परिपूर्ण बनाने का क्रम अनवरत जारी है। अभी-अभी लंदन स्थित दिगम्बर जैन मंदिर की जानकारी वेबसाइट पर उपलब्ध कराई गयी है।

संत शिरोमणि विद्यासागर जी उदात्त परोपकारी भावना से प्रेरित होकर समाज की संस्थाओं और ट्रस्टों जैसे श्री दिगम्बर जैन अमरकंटक क्षेत्रीय विकास समिति, अमरकंटक, श्री दिगम्बर जैन सिद्ध क्षेत्र, कुण्डलपुर (दमोह), श्री दिगम्बर जैन सिद्धोदय सिद्धक्षेत्र, नेमावर (म.प्र.) श्री दिगम्बर जैन शीतल विहार, शीतलधाम, विदिशा, बीना बारहा (जिला-सागर) तथा श्री शांतिनाथ दिगम्बर जैन अतिशय क्षेत्र, रामटेक (नागपुर) आदि में हजार वर्ष से अधिक समय तक टिकने वाले पाषाण के विशाल, कलात्मक मंदिर तेजी से पूर्ण स्वरूप ग्रहण करते जा रहे हैं। इन सबका सचित्र पर्याप्त विवरण वेबसाइट पर प्रस्तुत किया गया है। भाग्योदयतीर्थ हॉस्पिटल, प्राकृतिक चिकित्सालय व फार्मेसी कॉलेज, सागर में एक ही परिसर में है। जबलपुर के तिलवारा घाट पर संचालित

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

बालिकाओं के लिये सर्वसुविधायुक्त शिक्षा केन्द्र ज्ञानोदय विद्यापीठ 'प्रतिभा स्थली' आदि का विवरण वेबसाइट की थाती है। उपर्युक्त सभी संस्थाएँ वेबसाइट की सहयोगदाता है। इन संस्थाओं को दुनिया के किसी भी भाग से जो भी आर्थिक सहयोग देना चाहता है, वह वेबसाइट पर दिये गये इन संस्थाओं के बैंक अकाउंट में डायरेक्ट जमा कर सकता है।

वर्तमान दिगम्बर जैनसंतपरम्परा में आचार्य विद्यासागर जी के द्वारा दीक्षित शिष्यों की संख्या सर्वाधिक 279 है, जो सभी अनुशासित और बालब्रह्मचारी हैं। वर्तमान युग के महान् संत चारित्रचक्रवर्ती आचार्य श्री शांतिसागर जी तथा उनकी शिष्य परम्परा में दीक्षित आचार्य श्री वीरसागर जी, आचार्य श्री शिवसागरजी, आचार्य श्री ज्ञानसागरजी तथा इन्हीं के द्वारा दीक्षित-शिक्षित आचार्य श्री विद्यासागर जी हैं।

देश-विदेश में ऐसे जैन परिवार बहुतायत में हैं जिनके बच्चे मंदिर और धर्म से अनभिज्ञ हैं, जिन्हें धर्मसंबंधी प्राथमिक जानकारी तक भी नहीं है। उन सभी का ध्यान रखते हुए वेबसाइट पर दस धर्म, पाँच कल्याणक, भक्तामरपाठ, मेरी भावना, निर्वाणकाण्ड, आलोचनापाठ, भजन, आरती और धर्म की शिक्षा संबंधी जानकारी प्रस्तुत की गई है। वेबसाइट में कर्नाटक के श्रवणबेलगोला स्थित भगवान् बाहुबली, राजस्थान के अतिशयकारी भगवान् महावीर की तथा बड़वानी (म.प्र.) में स्थित प्रथम तीर्थंकर भगवान् ऋषभदेव की प्रतिमाओं के संग्रहणीय चित्र तथा वीडियो भी हैं। सिद्धक्षेत्र, अतिशय क्षेत्रों के साथ समाज की प्रमुख पत्र-पत्रिकाओं की सूची से देश-विदेश के हर उम्र के श्रद्धालुओं के लिये उनकी पसंद की सामग्री पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध है।

वेबसाइट पर सुझाव तथा उपयोगी जानकारी जो भी प्रदान करना चाहे, स्वागत है।

इनामी क्विज–इसी वर्ष जून महीने से जैनधर्म की इस अनोखी वेबसाइट से एक अभिनव पहल प्रश्न प्रतियोगिता (जैन इनामी क्विज) ऑन लाइन प्रारंभ की गई है। घोषणा अनुसार 50 विजेताओं को पुरस्कृत किया गया। इसी वर्ष जुलाई में 100 विजेताओं को इनाम प्रदान किये जावेंगे। प्रतियोगी वेबसाइट में उपलब्ध जानकारी के आधार पर दिये गये प्रश्न के चार उत्तर में से एक सही जवाब को चिह्नित करता है। चालू साल में ही वेबसाइट की सम्पूर्ण जानकारी को यूनिकोड में परिवर्तित कर दिया गया है। जिससे कम्प्यूटर पर हिन्दी में वेबसाइट सहजता से खुल रही है। समय के साथ परिवर्तित हो रही इस वेबसाइट को नई तकनीक से अपडेट करने, सजाने, सँवारने व बनाने का सम्पूर्ण श्रेय भारत के पहले बहुभाषी इंटरनेट पोर्टल वेबदुनिया डॉट कॉम को जाता है, जिसके योगदान के कारण नये रंगरूप में यह निरन्तर यूजर्स को आकर्षित कर रही है। वेबदुनिया कम्पनी के प्रेसिडेंट एवं मुख्य परिचालन अधिकारी श्री पंकज जैन तथा उनकी सहयोगी टीम की सेवाओं की जितनी सराहना की जाये कम है।

सम्पर्क- 22, जॉय बिल्डर्स कॉलोनी
(रानीसती गेट के अंदर) इन्दौर- 452 003

डॉ० चीरंजीलाल बगड़ा को शाकाहार मशाल वाहक उपाधि से सम्मान

कोलकाता। समस्त भारत में शाकाहार अहिंसा एवं जीवदया के लिए समर्पित समाजसेवी ६२ वर्षीय डॉ० चीरंजीलाल बगड़ा के सम्मानों की श्रृंखला में एक और महत्त्वपूर्ण कड़ी जुड़ने से शाकाहारप्रेमी समाज में हर्ष है। कोलकाता के प्रख्यात संत जेवियर्स कॉलेज से शिक्षा प्राप्त कर डॉ० बगड़ा जी ने १९९५ में शाकाहार पर कैलिफोर्निया यूनिवर्सिटी (यूएसए) से डॉक्टरेट की उपाधि प्राप्त की। वेजीटेरियन गाईड, दिशाबोध आदि पत्रिकाओं के माध्यम से आपने अपनी लेखनी से समाज को नई दिशा एवं चिन्तन प्रदान किया है। विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में शाकाहार सम्बन्धित आपके आलेख प्रमुखता से प्रकाशित होते रहे हैं। समस्त अहिंसा प्रेमियों को एक मंच पर लाकर संगठित-रूप से शाकाहार जीवदया हेतु कार्ययोजना को अंजाम देने हेतु आपने फेडेरेशन ऑफ अहिंसा आर्गेनाईजेशन की स्थापना की है। आपकी साहित्यिक रचनायें भी साहित्य-जगत में सराही गई हैं। अंग्रेजी और हिन्दी में प्रकाशित आपकी कृतियाँ वेजीटेरियनिज्म एण्ड जैनिज्म, डेयरी मिल्क १०० फैक्ट्स, इन्डियन कैटल वेल्थ, वेजीटेरियनिज्म इन लाईफ, मिथ्स ऑफ प्लानिंग कमीशन, गाय-१०० तथ्य, मेरे सपने, बुजुर्ग घर की थाती आदि पुस्तकें साहित्य-जगत् की अनमोल कृतियाँ हैं। आपने अपनी विदेश यात्राओं में अनेकों सेमिनारों में भाग लेकर अहिंसा शाकाहार पर रिसर्च पेपर पढ़े हैं।

अजीत पाटनी, कोलकाता

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जिज्ञासा-समाधान

पं० रतनलाल बैनाड़ा

प्रश्नकर्ता– धर्मचन्द जैन, देहली।

जिज्ञासा– ऊँ ह्रां ह्रीं आदि शब्दों का क्या अर्थ होता है?

समाधान– पं० गुलाब चन्द जी जैन द्वारा रचित 'प्रतिष्ठा-रत्नाकर' में ऊँ ह्रीं आदि बीजाक्षरों का अर्थ एवं शक्तियाँ इस प्रकार कही गई हैं–

ऊँ = यह शब्द पंचपरमेष्ठी, आत्मवाचक और प्रणववाचक है।

ह्रीं = यह 24 तीर्थंकरों का प्रतीक है।

श्री = यह कीर्तिवाचक है।

क्लीं = लक्ष्मीप्राप्ति-वाचक है।

ह्रां ह्रीं ह्रूं ह्रों ह्रः = ये सर्व शान्ति, मांगल्य, कल्याण विघ्नविनाशक, सिद्धिदायक हैं।

क्षां क्षीं क्षूं क्षें क्षैं क्षों क्षौं क्षः = सर्वकल्याण, सर्वशुद्धिबीज वाचक हैं।

स्वाहा = शान्ति और हवनवाचक है।

उपर्युक्त को आदि लेकर समस्त बीजाक्षरों की उत्पत्ति णमोकारमंत्र तथा इस मंत्र में प्रतिपादित पंच-परमेष्ठी के नामाक्षर तीर्थंकर नामाक्षरों से हुई है।

'भगवान् शान्तिनाथ विधान' में जो 1. क्म्ल्व्र्यूं 2. ख्म्ल्व्र्यूं 3. घ्म्ल्व्र्यूं 4. झ्म्ल्व्र्यूं 5. म्म्ल्व्र्यूं 6. म्ल्व्र्यूं 7. ह्म्ल्व्र्यूं 8. भ्म्ल्व्र्यूं ये आठ शब्द आते हैं, ये शक्ति प्रदान करनेवाले, आठ वज्र हैं।

जिज्ञासा– पंचपरमेष्ठी की आरती में ''छट्ठी ग्यारह प्रतिमाधारी, श्रावक बन्दों आनन्दकारी'' यह बोलना उचित है या नहीं?

समाधान– पंचपरमेष्ठी की आरती में, पाँचों परमेष्ठियों की आरती करना उचित है। ग्यारह प्रतिमाधारी श्रावक को पंच-परमेष्ठी की आरती में कैसे समाविष्ट कर लिया गया, यह प्रश्न वास्तव में विचारणीय है।

पंचपरमेष्ठी में अरिहन्त एवं सिद्ध तो वीतरागता एवं विज्ञानता की उत्कृष्ट दशा को प्राप्त हो चुके हैं, अतः वे तो परमपूज्य हैं ही। आचार्य, उपाध्याय एवं साधु परमेष्ठी भी वीतरागता एवं विज्ञानता के आराधक होने तथा उनको एक देश प्राप्त कर लेने के कारण पूज्य की कोटि में आते हैं, परन्तु ग्यारह प्रतिमाधारी, एलक, क्षुल्लक तथा क्षुल्लिका, जिन्होंने अभी तक पाँचों पापों का भी पूर्णतः त्याग नहीं किया है, पूज्य की कोटि में कैसे आ सकते हैं?

हमारे द्वारा पूज्य नवदेवता होते हैं। कहा भी है–

अरहंत सिद्ध साहू तिदयं जिण धम्म वयण पडिमाहू।
जिणणिलया इदिराए णवदेवा दिन्तु मे बोहि॥

अर्थ– अरिहन्त, सिद्ध आचार्य, उपाध्याय, साधु, जिनधर्म, जिनवाणी, जिनप्रतिमा तथा जिनालय, ये नवदेवता हैं। वे मुझे रत्नत्रय की पूर्णता प्राप्त कराएँ।

उपर्युक्त नवदेवता ही हमारे द्वारा पूजा एवं आरती करने योग्य हैं, अन्य नहीं। ग्यारह प्रतिमाधारी श्रावक, इन नवदेवताओं में नहीं आते। अतः वे पूजा या आरती के योग्य नहीं हैं। 'आरती' इस शब्द का अर्थ संस्कृत-हिन्दी-आप्टे-कोश में 'प्रतिमा के समाने दीपदान या कपूर-दीपक घुमाना, आरती उतारना' लिखा है। अर्थात् प्रतिमा के सामने सायंकाल के समय दीपदान करते हुए गुणानुवाद करना आरती कहलाता है। ऐसी दशा में वीतरागता एवं अनन्तचतुष्टय से परिपूर्ण जिनप्रतिमा के समक्ष ग्यारह प्रतिमाधारी श्रावक की आरती उतारना कैसे उचित कहा जा सकता है?

आचार्य कुन्दकुन्द ने दर्शनपाहुड़ की 26वीं गाथा में **'असंजदं ण बन्दे'** कहा है, जिसका अर्थ है कि असंयमी को नमोस्तु नहीं करना चाहिए। एलक, आर्यिका, क्षुल्लक एवं क्षुल्लिका ये सभी संयमासंयम नामक पंचम गुणस्थानवर्ती हैं। ये संयमी भी नहीं हैं क्योंकि आचार्य पूज्यपाद ने सर्वार्थसिद्धि अध्याय 9/1 की टीका में असंयम तीन प्रकार का कहा है, अनन्तानुबन्धी का उदय, अप्रत्याख्यानावरण का उदय, प्रत्याख्यानावरण का उदय। उपर्युक्त 11 प्रतिमाधारियों को प्रत्याख्यानावरण कषाय का उदय होने के कारण असंयमी कहा जाता है। ऐसे असंयमी पूजा या आरती के योग्य नहीं होते। जिनवाणी-संग्रह आदि पूजा की किताबों में इनकी पूजा या आरती दृष्टिगोचर नहीं होती। इनको मोक्षमार्गी भी नहीं कहा जाता, क्योंकि आचार्य कुन्दकुन्द ने सूत्रपाहुड़ गाथा-23 में **'णग्गो विमोक्खमग्गो, सेसा उम्मग्गया सव्वे' अर्थ–** नग्न वेश ही मोक्षमार्ग है, शेष सब उन्मार्ग है, ऐसा कहा है। ग्यारह प्रतिमाधारी उपर्युक्त सभी वस्त्रधारी होने के कारण मोक्षमार्गी नहीं हैं। अतः पूजा, आरती आदि के

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

योग्य भी नहीं हो सकते।

उपर्युक्त सभी तथ्यों को ध्यान में रखते हुए, विज्ञजनों को पंचपरमेष्ठी की आरती करते समय 'छट्ठी ग्यारह प्रतिमाधारी, श्रावक बन्दों आनन्दकारी' नहीं बोलना चाहिए। उसके स्थान पर, छट्ठी आरती श्री जिनवाणी... बोलना चाहिए। यही उचित मार्ग है।

प्रश्नकर्ता– अमरचन्द जैन, जबलपुर।

जिज्ञासा– चार पुरुषार्थों का स्वरूप और उनकी उपयोगिता बतायें?

समाधान– पुरुषार्थ शब्द का अर्थ, अष्टशती में इस प्रकार कहा है– **'पौरुषं पुनरिह चेष्टितम्'**

अर्थ– चेष्टा करना पुरुषार्थ है। पुरुषार्थ के चार भेद कहे गये हैं, धर्म अर्थ, काम और मोक्ष। इनका स्वरूप परमात्मप्रकाश (गाथा 126) में इसप्रकार कहा है –

धम्महँ अत्थहँ कामहँ वि एयहँ सयलहँ मोक्खु।
उत्तमु पभणहिं णाणि जिय अण्णँ जेण ण सोक्खु॥

अर्थ– हे जीव। धर्म, अर्थ और काम रूप इन सभी से ज्ञानी मोक्ष को ही उत्तम कहते हैं, क्योंकि अन्य से सुख नहीं है।

टीकार्थ– धर्म शब्द से यहाँ पुण्य समझना (पुण्य प्राप्ति के लिए पूजा-स्वाध्याय आदि करना), अर्थ शब्द से पुण्य का फल राज आदि सम्पदा जानना और काम शब्द से उस राज का मुख्य फल स्त्री, वस्त्र, सुगंधित माला आदि वस्तु रूप भोग जानना। इन तीनों से परम सुख नहीं है, क्लेश रूप दुख ही है।

श्री भगवती-आराधना में इस प्रकार कहा है– (गाथा नं. 1807-1814) **अर्थ**– अर्थ, काम और सब मनुष्यों की देह अशुभ है। सब सुखों की खान एक धर्म ही शुभ है, शेष सब अशुभ है। (1807)

अर्थ पुरुषार्थ–धन सब अनर्थों की जड़ है। यह जीव में इस लोक और परलोक संबंधी दोष लाता है अर्थात् धन पाकर मनुष्य विषयों में फँस जाता है और उससे वह इस लोक में भी निन्दा का पात्र होता है, और परलोक में भी कष्ट उठाता है। मृत्यु आदि महान् भयों का मूल होने से धन महाभय रूप है। और मोक्षमार्ग के लिए तो बेड़ी है। धन में मस्त मनुष्य मोक्ष की बात भी सुनना नहीं चाहता। (1808)

काम पुरुषार्थ– यह काम भोग अपवित्र अपने और पर के शरीर के संयोग से पैदा होता है। यह मनुष्य को गिराता है, उसे लोगों की दृष्टि में नीचा करता है। यह अल्पकाल के लिए होता है तथा दोनों ही लोकों में दुखदाई है। तथा सुलभ भी नहीं है। (1809)

धर्म पुरुषार्थ– धर्म पवित्र है क्योंकि रत्नत्रयात्मक धर्म में स्थित को, देव भी नमस्कार करते हैं। पवित्र धर्म के सम्बन्ध से आत्मा भी पवित्र है। धर्म से ही साधु भी जल्लौषधि आदि ऋद्धियों को प्राप्त करते हैं अर्थात् रत्नत्रय रूप धर्म का साधन करने से साधुओं के शरीर का मल भी औषधि रूप हो जाता है।

मोक्षपुरुषार्थ का स्वरूप ज्ञानार्णव (3/6) में इस प्रकार कहा है– जो प्रकृति, प्रदेश, स्थिति तथा अनुभाग रूप समस्त कर्मों के संबंध के सर्वथा नाशरूप लक्षण-वाला संसार का प्रतिपक्षी है, वही मोक्ष है। इस मोक्ष के लिए पुरुषार्थ करना मोक्ष पुरुषार्थ है। जिनेन्द्र भगवान् सर्वज्ञ हैं, वे सम्यग्दर्शन ज्ञान और चारित्र को मुक्ति का कारण कहते हैं, वे इन सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र से ही मोक्ष की साधना करते हैं।

उपर्युक्त प्रमाणों का सारांश यह है कि अर्थ व काम पुरुषार्थ अकल्याणकारी हैं, धर्म-पुरुषार्थ पुण्य रूप होने से लौकिक कल्याण को देनेवाला है और परम्परा से मोक्ष को भी प्राप्त करानेवाला है। मोक्ष-पुरुषार्थ तो साक्षात् कल्याणप्रद है। मुनि महाराज तो धर्म और मोक्ष पुरुषार्थ का साधन करते हैं। पूज्य आचार्य विद्यासागर जी महाराज के अनुसार, सद्गृहस्थों को न्याय-नीति-पूर्वक धर्म, अर्थ एवं काम पुरुषार्थ का सेवन करना चाहिए तथा तीनों पुरुषार्थों को समान समय अर्थात् 8-8 घंटे देने चाहिए।

जिज्ञासा– तिर्यंच गति को अशुभ कहा है परन्तु तिर्यंच आयु को शुभ क्यों कहा है?

समाधान– उपर्युक्त जिज्ञासा के समाधान में राजवार्तिककार ने अध्याय-8, सूत्र-25 की टीका में इस प्रकार कहा है– यद्यपि तिर्यंचगति अशुभ है, परन्तु तिर्यंच आयु शुभ है क्योंकि तिर्यंचगति में जाना कोई नहीं चाहता है, परन्तु तिर्यंचगति में पहुँच जाने पर वहाँ से निकलना नहीं चाहता है। अत: तिर्यंच आयु पुण्य- प्रकृति है और तिर्यंच गति पापप्रकृति है।

प्रश्नकर्त्ता– ब्र० जिनेश कुमार, गुड़गाँव।

जिज्ञासा– संयमासंयम और संयम की प्राप्ति कम

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

से कम कितनी आयु में हो सकती है?

समाधान– उपर्युक्त प्रश्न पर सर्वप्रथम तिर्यंचों द्वारा संयमासंयम की प्राप्ति के संबंध में सबसे कम आयु का विचार करते हैं।

1. श्री धवला 5/32 में इस संबंध में 2 उपदेश प्राप्त होते हैं–

(अ) दक्षिण प्रतिपत्ति के अनुसार तिर्यंचों में उत्पन्न हुआ जीव 2 मास और मुहूर्त-पृथक्त्व (तीन से नौ के बीच) से ऊपर सम्यक्त्व और संयमासंयम को प्राप्त करता है।

(आ) उत्तर प्रतिपत्ति के अनुसार वह तीन पक्ष तीन दिवस और अन्तर्मुहूर्त के ऊपर सम्यक्त्व और संयमा संयम को प्राप्त होता है।

2. सर्वार्थसिद्धि पैरा-90 में संयतासंयत का एक जीव की अपेक्षा उत्कृष्ट काल कुछ कम एक करोड़ पूर्व कहा है अर्थात् पूर्वकोटि की आयुवाला जो सम्मूर्छन तिर्यंच उत्पन्न होने के अन्तर्मुहूर्त के बाद वेदक सम्यक्त्व के साथ संयमासंयम को प्राप्त करता है, उसके संयमा-संयम का उत्कृष्ट काल होता है। यह काल अन्तर्मुहूर्त कम एक पूर्व कोटि है।

अब मनुष्यों में संयमासंयम तथा संयम प्राप्ति की सबसे कम आयु पर विचार करते हैं।

श्री धवला पुस्तक-10, पृष्ठ-278 में कहा है- गर्भ से निकलने के प्रथम समय से लेकर आठ वर्ष बीत जाने पर संयम ग्रहण के योग्य होता है, इसके पहले संयम ग्रहण करने के योग्य नहीं होता, यह इसका भावार्थ है। गर्भ में आने के प्रथम समय से लेकर आठ वर्षों के बीतने पर संयम ग्रहण के योग्य होता है, ऐसा कितने आचार्य कहते हैं, किन्तु वह घटित नहीं होता, क्योंकि ऐसा मानने पर 'योनि निष्क्रमण रूप जन्म से' यह सूत्र वचन नहीं बन सकता। यदि गर्भ में आने के प्रथम समय से लेकर आठ वर्ष ग्रहण किये जाते हैं, तो 'गर्भ पतन रूप जन्म से आठ वर्ष का हुआ' ऐसा सूत्रकार कहते हैं, किंतु उन्होंने ऐसा नहीं कहा है। इसलिए 7 मास अधिक 8 वर्ष का होने पर संयम को प्राप्त करता है, यही अर्थ ग्रहण करना चाहिए, क्योंकि अन्यथा सूत्र में 'सर्व लघु' पद का निर्देश घटित नहीं होता।

प्रश्नकर्त्ता– राजेन्द्र कुमार जैन, कासगंज।

जिज्ञासा– लोभ कितने प्रकार का होता है?

समाधान– आचार्यों ने धन आदि की तीव्र आकांक्षा को लोभ कहा है अथवा बाह्य पदार्थों में जो 'यहा मेरा है' इस प्रकार अनुरागरूप बुद्धि होती है, उसे लोभ कहते हैं। यह चार प्रकार का होता है। श्री मूलाचार प्रदीप में लोभ के चार भेद इसप्रकार कहे हैं-

जीवितारोग्यपंचेन्द्रियोपभोगैश्चतुर्विधः।
स्वान्ययोरत्रलोभोदक्षैस्त्याज्यः समुक्तये॥ 2959॥

अर्थ– इस संसार में लोभ चार प्रकार का है। 1. जीवित रहने का लोभ (अधिक समय तक जीवित रहने की आकांक्षा करना) 2. आरोग्य रहने का लोभ (निरन्तर स्वस्थ एवं नीरोग रहने की आकांक्षा करना) 3. पंचेन्द्रियों का लोभ (पाँचों इन्द्रियों के विषयों की निरन्तर प्राप्ति की आकांक्षा करना) 4. भोगोपभोग की सामग्री का लोभ। चतुर पुरुषों को मोक्ष प्राप्त करने के लिये अपने तथा दूसरों के, दोनों के लिए, चारों प्रकार के लोभ का त्याग कर देना चाहिए।

1/205, प्रोफेसर्स कॉलोनी,
आगरा (उ.प्र.)

स्वाभिमान के तीरथ बनना, निस्पृहता की मूरत बनना।
अपने में आने के पहले, कण-कण में पूजित ही बनना॥
नित्य बनाते रहे मकबरा, केवल बाह्यप्रदर्शन को।
तो अपने से दूर हो रहे, खोकर अन्तर्दर्शन को॥

योगेन्द्र दिवाकर, सतना म.प्र.

जो रहीम गति दीप की, कुल कपूत गति सोय।
बारे उजियारो लगै, बढ़े अँधरो होय॥
जो रहीम गति दीप की, सुत सपूत की सोय।
बड़ो उजेरो तेहि रहे, गये अँधेरे होय॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ग्रन्थ-समीक्षा

वर्णी पत्रसुधा

समीक्षक- डॉ० कमलेश कुमार जैन

कृति का नाम- वर्णी पत्र सुधा, **सम्पादक**- नरेन्द्र विद्यार्थी, **प्रस्तुति**-सुधा-देवेन्द्र जैन, **प्रकाशक**- श्रीमती सुधा-देवेन्द्र जैन, सन्मति ट्रस्ट, बी 21 कहाननगर, एन० सी० केलकर रोड, दादर (प०), बम्बई - 400028 फोन : 098693 54221

पूज्य गणेश प्रसाद वर्णी का जन्म वि.सं. 1931 में आश्विन कृष्णा चतुर्थी को हुआ था और स्वर्गवास वि.सं. 2018 में भाद्रपद कृष्णा एकादशी को। यदि प्रारम्भ के बीस-पच्चीस वर्षों को छोड़ दिया जाये, तो लगभग साठ वर्षों तक वे जैनसमाज के भाग्यविधाता के रूप में छाये रहे हैं। उनका सम्पूर्ण जीवन अत्यन्त पवित्र और सादगीपूर्ण था। यद्यपि उनका जन्म असाटी जाति में हुआ था, किन्तु जैनधर्म पर उनकी ऐसी अटूट श्रद्धा थी कि तथाकथित स्वयम्भू नेताओं के द्वारा अनेक बार अपमानित करने पर भी उन्होंने सत्य के मार्ग को नहीं छोड़ा। उन्होंने जैनसमाज पर वह उपकार किया है, जो उन्हें अनेक शताब्दियों तक सश्रद्धा स्मरण करने और कराने के लिये बाध्य करता रहेगा। ऐसे आध्यात्मिक सन्त द्वारा समय-समय पर जन सामान्य से लेकर आबाल-वृद्धों तक के लिय उद्‌बोधन देने हेतु अनेक त्यागियों, श्रीमन्तों, धीमानों एवं श्रावकों को जो पत्र लिखे हैं, वे आज भी अपनी गम्भीरता और सहजता के कारण अत्यन्त प्रासङ्गिक हैं और समाज, शिक्षा एवं अध्यात्म के क्षेत्र में मील का पत्थर साबित हो रहे हैं। उन्हीं पूज्यश्री के पत्रों का संकलन है- वर्णी पत्रसुधा। इन पत्रों का संकलन और सम्पादन किया है उनके अनन्यभक्त डॉ. नरेन्द्र विद्यार्थी छतरपुर ने, तथा प्रकाशन एवं प्रस्तुति का श्रेय प्राप्त किया है श्रीमती सुधा-देवेन्द्र जैन बम्बई ने। इस दम्पती का जैनसमाज को इसलिये भी आभारी होना चाहिए कि इन्होंने आधुनिकता की चकाचौंध में डूबी हुई औद्योगिक नगरी मुम्बई में सन्मति-ट्रस्ट की स्थापना करके उसके द्वारा अनेक ग्रन्थों का प्रकाशन किया है और जैनसमाज को लागत मूल्य में उपलब्ध कराया है।

इन पत्रों का प्रकाशन पहले वी.नि.सं. 2484 में वर्णी-जैन-ग्रन्थमाला काशी से 'पत्र पारिजात' के नाम से हुआ था और अब उसी का परिवर्तित नाम है प्रस्तुत कृति 'वर्णी पत्रसुधा'। वर्णी जी के पत्रों के संग्रह-रूप इस कृति के नाम में **सुधा** शब्द जुड़ा है, जो द्व्यर्थक है, क्योंकि ट्रस्ट के संस्थापक दम्पती में से पत्नी का नाम सुधा है। अतः ग्रन्थ के नाम के साथ स्वयं का नाम जुड़ना निश्चत ही प्रकाशक के लिये एक आनन्द-परक अनुभूति है।

पूज्य वर्णीजी ने सन् 1919 से लेकर 22 वर्षों तक जैनसमाज के विविध लोगों के नाम जो शताधिक पत्र लिखे थे, उन्हें सम्पादित कर डॉ० नरेन्द्र विद्यार्थी ने साधुवर्ग, साध्वीवर्ग, धीमन्तवर्ग, श्रीमन्तवर्ग, साधारणवर्ग और विद्यार्थीवर्ग-इन छह खण्डों मे विभाजित किया है। इन पत्रों के संकलन करने, पढ़ने और उन्हें सम्पादित करने में जो श्रम डॉ० विद्यार्थी जी ने किया है, उसका उल्लेख उन्होंने स्वयं 'अपनी बात' शीर्षक में किया है। प्रस्तुत कृति वर्णी पत्र सुधा में केवल साधुवर्ग और साध्वीवर्ग को लिखे गये पत्रों का संकलन है।

पूज्य वर्णी जी का दिगम्बर जैनसमाज पर महान् उपकार है। उन्होंने पत्रों के माध्यम से जैनसमाज, किंवा, जैनेतर-समाज का जो मार्गदर्शन किया है, वह अद्वितीय है। इन पत्रों में जहाँ पूज्य वर्णी जी की सरलता का दिग्दर्शन होता है, वहीं यह जैनसमाज की तत्कालीन धड़कनों का एक जीता-जागता इतिहास भी है। उन्होंने इन पत्रों के माध्यम से पूज्यजनों के प्रति अपनी अनन्य श्रद्धा व्यक्त की है। तत्कालीन जैनसमाज के इतिहास-लेखन में इन महत्त्वपूर्ण पत्रों का उपयोग किया जा सकता है।

पूज्य वर्णी जी ने 'मेरी जीवन गाथा' में अपने सम्पूर्ण जीवन का जिस सच्चाई के साथ उल्लेख किया है वह आत्म-शोधन की प्रक्रिया में अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। उसी प्रकार 'वर्णी पत्र सुधा' में संकलित उनके पत्र जहाँ अध्यात्म की ऊँचाईयों का स्पर्श करनेवाले हैं, वहीं

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जीव मात्र के प्रति कल्याण की भावना उनके अन्तरङ्ग को प्रतिबिम्बित करती है। नवनीत से भी अधिक कोमल और निर्मल हृदय की झाँकी उनके सार्वजनिक जीवन में भी स्पष्ट दिखलाई देती थी। उनके संस्मरण आज भी जनसामान्य में बहुमात्रा में प्रचलित हैं। विद्वज्जन जब उन संस्मरणों को अपनी वाणी का विषय बनाते हैं, तो लोग जहाँ उनसे चुटकुलों जैसी आनन्द की अनुभूति प्राप्त करते हैं, वहीं विषय की गहराई का स्पर्श किये बिना नहीं रहते हैं।

जिन्होंने पूज्य वर्णी जी को देखा, वे धन्य हो गये और जिन्होंने उनकी सङ्गति को प्राप्त किया, वे तर गये। **'आपत्तियों से टक्कर लेना, विपत्ति में धर्म न छोड़ना, दूसरों का दुःख दूर करने के लिये असहायों की सहायता, अज्ञानियों को ज्ञान और शिक्षार्थियों को सब कुछ देना इनके (वर्णी जी के) जीवन का व्रत था।'** डॉ० नरेन्द्र विद्यार्थी का यह कथन पूज्य वर्णी जी के सम्पूर्ण जीवन की एक झाँकी अथवा उनके सम्पूर्ण जीवनदर्शन को अत्यन्त संक्षेप में प्रस्तुत करता है।

पूज्य वर्णी जी ने कल्याण की भावना से जो पत्र दूसरों को लिखे हैं, वे तो महत्त्वपूर्ण हैं ही, किन्तु उन्होंने जो पत्र अपने को सम्बोधित करते हुये लिखा है, वह अत्यन्त मार्मिक है। आत्म-परीक्षण किंबा आत्म-साक्षात्कार का ऐसा निदर्शन अन्यत्र दुर्लभ है। अपने को सम्बोधित किये गये पत्र के कुछ अंश इस प्रकार हैं-

श्रीमान् वर्णी जी ! योग्य इच्छाकार

बहुत समय से आपके समाचार नहीं पाये, इससे चित्तवृत्ति सन्दिग्ध रहती है कि आपका स्वास्थ्य अच्छा नहीं है। सम्भव है आप उससे कुछ उद्विग्न रहते हों और यह उद्विग्नता आपके अन्तस्तत्त्व की निर्मलता को कृश करने में समर्थ हुई हो। यद्यपि आप सावधान हैं, परन्तु जब तक इस शरीर से ममता है, तब तक सावधानी का भी ह्रास हो सकता है। आपने बालकपने से ऐसे पदार्थों का सेवन किया जो स्वादिष्ट और उत्तम थे। इसका मूल कारण यह था कि आपके पुण्योदय से श्री चिरौंजाबाई जी का संसर्ग हुआ। तथा श्रीयुत सर्राफ मूलचन्द्र का संसर्ग हुआ। जो सामग्री आप चाहते थे, इनके द्वारा आपको मिलती थी। आपने निरन्तर देहरादून से चाँवल मँगाकर खाये, उन मेवादि का भक्षण किया जो अन्य हीन पुण्य- वालों को दुर्लभ थे तथा उन तैलादि पदार्थों का उपयोग किया जो धनाढ्यों को ही सुलभ थे। केवल तुमने यह अति अनुचित कार्य किया, किन्तु तुम्हारे आत्मा में चिरकाल से एक बात अति उत्तम थी कि तुम्हें धर्म की दृढ़ श्रद्धा और हृदय में दया थी, उसका उपयोग तुमने सर्वदा किया। तुम निरन्तर दुःखी जीव देखकर उत्तम से उत्तम वस्त्र तथा भोजन को देने में संकोच नहीं करते थे, यही तुम्हारे श्रेयोमार्ग के लिये एक मार्ग था। न तुमने कभी भी मनोयोग पूर्वक अध्ययन किया, न स्थिरता से पुस्तकों का अवलोकन ही किया न चारित्र का पालन किया और न तुम्हारी शारीरिक सम्पदा चारित्र पालन की थी। तुमने केवल आवेग में आकर व्रत ले लिया। व्रत लेना और बात है और उसका आगमानुकूल पालन करना अन्य बात है।---

इस जीव को मैंने बहुत कुछ समझाया कि तूँ पर पदार्थों के साथ जो एकत्वबुद्धि रखता है, उसे छोड़ दे, परन्तु यह इतना मूढ है कि अपनी प्रकृति को नहीं छोड़ता, फलतः निरन्तर आकुलित रहता है। क्षणमात्र भी चैन नहीं पाता।

ईसरी, माघ शुक्ल 13, सं. 1999

आपका शुभचिन्तक
गणेश वर्णी

स्वयं को लिखे गये इस पत्र से पूज्य वर्णी जी की अपने प्रति कैसी दृष्टि थी? इसकी एक छोटी, किन्तु आत्म-निरीक्षणपरक झाँकी मिलती है।

प्रस्तुत कृति 'वर्णी पत्र सुधा' में पूज्य वर्णी जी द्वारा जैनसमाज के जिन 34 संयमीजनों को लिखे गये पत्रों का संकलन है, उन सभी संयमीजनों का पत्रों से पूर्व संक्षेप में परिचय भी डॉ० नरेन्द्र विद्यार्थी ने दिया है। पुनः प्रत्येक के नाम लिखे गये पत्रों को एक ही स्थान पर संकलित कर दिया है, ऐसे शताधिक पत्रों का संकलन है-'वर्णी पत्र सुधा'।

'वर्णी पत्र सुधा' में पूज्य साधुवर्ग को लिखे गये 350 एवं साध्वीवर्ग को लिखे गये 119 पत्र- इस प्रकार कुल 469 पत्रों का संग्रह है। इनमें पूज्य वर्णीजी द्वारा स्वयं को सम्बोधित कर लिखा गया पत्र अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है, जिसका पूर्व में उल्लेख किया जा चुका है।

कुछ पत्र तो इतने लम्बे हैं कि वे अपने आप में स्वतन्त्र आलेख हैं। वर्णी जी ने पत्रों के प्रारम्भ में, जिसको पत्र लिखा गया है, उस व्यक्ति को ससम्मान

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सम्बोधित किया है और उसके पद के अनुसार यथायोग्य विनय भी लिखी है, तथा सब से अन्त में आपका शुभचिन्तक-गणेश वर्णी लिखा है। पत्र किस स्थान से लिखा है और किस तिथि को लिखा है? इस सब का भी उल्लेख है। इतना ही नहीं, अपितु जिन स्थानों के लोगों को पत्र लिखे हैं, उन स्थानों के अन्य श्रेष्ठियों, विद्वानों अथवा त्यागियों को भी पत्र के अन्त में योग्य विनय कहने का निर्देश दिया है। पत्रों के मध्य में शास्त्रों से उद्धरण दिये हैं तथा आवश्यकतानुसार सूक्तियों और संक्षेप में कथाओं का भी प्रयोग किया है। जैन-सिद्धान्तों को दैनिक जीवन में कैसे आत्मसात किया जाये? इसके लिये आवश्यक सूत्रों, बिन्दुओं का पत्रों के मध्य में उल्लेख है।

ये वे पत्र हैं जो डॉ० नरेन्द्र विद्यार्थी को विभिन्न स्रोतों से उपलब्ध हो गये थे। अभी पूज्य वर्णी जी द्वारा लिखे गये सैकड़ों पत्र लोगों के संग्रहों, फाइलों में दबे होंगे, जिनका संकलन, सम्पादन एवं प्रकाशन अपेक्षित है, जिससे वर्णी जी द्वारा समाज के नाम लिखे गये दस्तावेज सामने आ सकें। अच्छा तो यह हो कि इन पत्रों और उनके अन्य पत्रों को आधार बनाकर एक शोध-प्रबन्ध तैयार कराया जाये, जिससे तत्कालीन अनेक धार्मिक सामाजिक एवं सांस्कृतिक गतिविधियों और तथ्यों का उद्घाटन हो सके।

प्रोफेसर एवं अध्यक्ष :
जैन-बौद्धदर्शन विभाग
संस्कृतविद्या-धर्मविज्ञान सङ्काय
काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी।

ग्रन्थसमीक्षा

'कर्म कैसे करें?'

प्रवचन संग्रह- मुनिश्री क्षमासागर जी, **प्रकाशक**-मैत्री समूह। **पृष्ठ**-XV-१९२। **मूल्य**- रु. ६०/-

संसारी जीव अनादिकाल से कर्म-संयुक्त दशा में रागी-द्वेषी होकर अपने स्वभाव से च्युत होकर संसार-परिभ्रमण कर रहा है। इस परिभ्रमण का मुख्य कारण अज्ञानतावश कर्म-आस्रव और कर्मबंध की प्रक्रिया है, जिसे हम निरन्तर करते रहते हैं। कर्मबंध की यह प्रक्रिया अत्यन्त जटिल है और उसे पूर्णरूप से जान पाना अत्यन्त कठिन है, लेकिन यदि हमें केवल इतना भी ज्ञान हो जाए कि किन कार्यों के करने से हम अशुभ कर्मों का बंध कर रहे हैं, तो सम्भव है, हम अपने पुरुषार्थ को सही दिशा देकर शुभ-कर्मों के बन्ध का प्रयास कर सकते हैं। सन 2002 के वर्षायोग में मुनि श्री ने जयपुर में अपने 18 प्रवचनों से जनसाधारण को कर्मसिद्धान्त के जैनदर्शन में प्रतिपादित विषयों से अवगत कराने हेतु सरल भाषा में उन परिणामों को स्पष्ट किया है जिनके कारण हम अज्ञानता से अशुभ कर्मों का बंध करते रहते हैं। उन प्रवचनों को इस पुस्तक में सम्पादित किया गया है।

मुनि श्री क्षमासागर जी श्रेष्ठ मनीषी, संत-कवि, चिंतक, प्रभावी प्रवचनकार, मौलिक-साहित्य-स्रष्टा, वैज्ञानिक और अन्वेषक हैं। उन्होंने जन-साधारण का ध्यान रखकर विषय को अत्यन्त सरल भाषा में इस तरह प्रस्तुत किया है कि सभी को कम से कम इस बात का ज्ञान हो कि उन्हें अपने दैनिक-कार्य-कलापों में क्या सावधानी रखनी है, अपने पुरुषार्थ को क्या दिशा देनी है, जिससे अशुभ से बचकर शुभ कार्यों मे प्रवृत्ति बढ़ती जाये। भाषा की सरलता का इससे ही अनुमान लगाया जा सकता है कि इन प्रवचनों में मुनिश्री ने एक बार भी कहीं कर्मों के उदय, उदीरणा, संक्रमण, अपकर्षण, उत्कर्षण, निधत्ति, निकाचित जैसे शब्दों का प्रयोग नहीं किया है, क्योंकि जनसाधारण इनके अर्थों से भलि-भाँति परिचित नहीं होता। उन्होंने तो प्रकृति, प्रदेश, स्थिति और अनुभाग आदि की भी चर्चा नहीं की है, उनका उद्देश्य तो जनसाधारण को उस प्रक्रिया से अवगत कराना मात्र प्रतीत होता है जिससे वे अशुभ-कर्म के आस्रव-बंध से बचने का प्रयास करें।

जनसाधारण के लिये यह प्रवचन-संग्रह अत्यन्त उपयोगी है। पुस्तक का गेट-अप, छपाई आदि अत्यन्त सुन्दर और आकर्षक है। पुस्तक का मूल्य भी अल्पतम रखा गया है। मैत्री-समूह ने इन प्रवचनों को पुस्तक रूप में प्रकाशित कर समाज का कल्याण किया है, इसके लिये वह बधाई का पात्र है।

समीक्षक- एस. एल. जैन, भोपाल, म.प्र.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

श्री दिगम्बर जैन अतिशय क्षेत्र नेमगिरि

पं० रतनलाल बैनाड़ा

श्री दिगम्बर जैन-अतिशय-क्षेत्र नेमगिरि, महाराष्ट्र के परभणी जिले में जिन्तूर से उत्तर दिशा की ओर 3 कि.मी. की दूरी पर सहयाद्री पर्वत की उपश्रेणियों में बसा हुआ है। यहाँ दो पर्वत हैं, जो नेमगिरि और चन्द्रगिरि के नाम से जाने जाते हैं। दोनों पर्वतों के बीच में चारणऋद्धिधारी मुनियों की अतिप्राचीन चरणपादुकाएँ विराजमान हैं। कहा जाता है कि अन्तिम तीर्थंकर भगवान् महावीर का समवसरण तेर क्षेत्र की ओर जाते समय यहाँ चन्द्रगिरी पर्वत पर आया था। यह भी कहा जाता है कि उत्तर भारत में दुर्भिक्ष पड़ने के कारण अन्तिम श्रुतकेवली आचार्य भद्रबाहु महाराज, अपने चन्द्रगुप्त आदि 12000 शिष्य मुनियों के साथ इस क्षेत्र पर पधारे थे। तब उन्होंने भगवान् पार्श्वनाथ की प्रतिमा की पुनः प्राण-प्रतिष्ठा कर मूर्ति को सूरिमन्त्र दिया था। सूरिमंत्र एवं आचार्य भद्रबाहु की तपस्या के प्रभाव से भगवान् पार्श्वनाथ की मूर्ति जमीन से अधर अन्तरिक्ष में हो गई थी। आज भी ओंकारावर्त फणामण्डप से युक्त अन्तरिक्ष में विराजमान भगवान् पार्श्वनाथ की प्रतिमा, जो विश्व में अनुपम आकृति को लिये हुए अद्वितीय प्रतिमा है, लोगों के आकर्षण एवं आश्चर्य का कारण बनी हुई है।

यह एक ऐसा अनुपम क्षेत्र है, जो पहाड़ी के 17 फुट अन्दर भूगर्भ में सात गुफाओं में छोटे-छोटे दरवाजों से युक्त तथा विशाल मनोज्ञ जिनबिम्बों से युक्त है। आश्यर्च यह देखकर होता है कि इन गुफाओं के अन्दर इतने बड़े-बड़े बिम्ब स्थापित कैसे किये गये होंगे। क्षेत्र का परिचय इस प्रकार है-

गुफा नं. 1- इस गुफा में साढ़े तीन फुट ऊँची काले पाषाण की पद्मासन मुद्रा में स्थित भगवान् महावीर स्वामी की मनोज्ञ प्रतिमा है, जो संवत् १६७६ की है।

गुफा नं. 2- इस गुफा में कर्ण तक केश-लताओं से व्याप्त अति प्राचीन तीन फुट ऊँची भगवान् आदिनाथ की प्रतिमा है।

गुफा नं. 3- इस गुफा में परम शान्ति-प्रदायक भगवान् शान्तिनाथ की वीतराग मुद्रा में, पद्मासन में विराजमान 6 फुट ऊँची प्रतिमा है, जिसका शिल्प अद्भुत है। इसके दर्शन से अपूर्व मानसिक शान्ति का अनुभव होता है।

गुफा नं. 4- चक्रव्यूह के आकारवाली इन गुफाओं में यह बीचवाली गुफा है। इस गुफा में क्षेत्र के मूलनायक श्री 1008 भगवान् नेमिनाथ की अत्यन्त मनोज्ञ सातिशय साढ़े सात फुट ऊँची भव्य विशाल प्रतिमा विराजमान है। वीतरागता की साक्षात् यह प्रतिकृति मन में आह्लाद उत्पन्न करनेवाली तथा असीम शान्ति-प्रदायक है। काले पाषाण की इस प्रतिमा के दर्शन करते ही, दर्शनार्थी भाव-विभोर हो आत्मानन्द को प्राप्त हो जाता है। मूर्ति के नीचे वेदी पर इस मूर्ति के जीर्णोद्धार करनेवाले श्री वीर संघवी तथा उनके तीनों पुत्रों की सपत्नीक वंदना मुद्रा अंकित है।

गुफा नं. 5- यह वह गुफा है, जहाँ संसार का सबसे बड़ा आश्चर्य देखने को मिलता है। दर्शनार्थी यहाँ आते ही अपनी सुध-बुध खोकर तन्मयता से टकटकी लगाकर प्रतिमा के दर्शन करते-करते नहीं थकता है। कभी नीचे, कभी ऊपर, कभी वेदी, कभी अन्तरिक्ष, कभी ओंकारावर्त भव्य फणा एवं कभी सुन्दर मनोज्ञ-प्रतिमा को निहारते हुए दर्शनार्थी अपने जीवन को सफल मानते हैं। यहाँ के दर्शन हेतु देवगण आज भी आते हैं। नागराज तो अक्सर ही यहाँ आते हैं। यद्यपि प्रतिमा का वजन 9 टन है, फिर भी जब से श्रुतकेवली आचार्य भद्रबाहु ने इस प्रतिमा को सूरिमंत्र दिया, तब से प्रतिमा अधर में है। ऐसी प्रतिमा विश्व में अन्य स्थान पर देखने को नहीं मिलती।

गुफा नं. 6- यहाँ साढ़े-चार फुट ऊँचाईवाली खड्गासन मुद्रा में चतुर्मुख जिनबिम्ब हैं, इसे लोग नन्दीश्वर के नाम से पूजते हैं।

गुफा नं. 7- यहाँ भगवान् बाहुबली की विचित्र प्रतिमा है, जो नीचे से ऊपर तक बेलों से लिपटी हुई तथा कन्धों पर सर्प और जाँघों पर छेद होने से अत्यन्त अद्भुत है। प्रतिमा की ऊँचाई पौने पाँच फुट है।

इन सब गुफाओं के दर्शन कर, दर्शनार्थी चन्द्रगिरि पर विराजमान भगवान् शान्तिनाथ, कुन्थुनाथ और अरह-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

नाथ की खड्गासन प्रतिमाओं के दर्शन करने के लिए चढ़ता है। यह प्रतिमा साढ़े पाँच फुट ऊँची और चार फुट चौड़ी है। इस प्रतिमा की विशेषता यह है कि इसमें भगवान् बाहुबलि की लता एवं सर्प युक्त प्रतिमा, भरत चक्रवर्ती की हाथ जोड़कर निर्ग्रन्थ प्रतिमा की मुद्रा, गणधर पादुका, ऋद्धिधारी मुनियों की चरण पादुका, चार अनुयोग एवं पंच परमेष्ठी के प्रतीक चिह्न उत्कीर्ण हैं।

यह क्षेत्र जिन्तूर शहर में है, जो औरंगाबाद-हैदराबाद हाइवे पर स्थित है। रेलगाड़ी से परभणी जंक्शन पर उतरकर वहाँ से 42 कि. मी. की दूरी पर है। औरंगाबाद, जालना, परभणी, नान्देड़, अकोला से बहुत सी बसें मिलती हैं। यह क्षेत्र मुक्तागिरि से 300 कि. मी., कुन्थलगिरि से 250 कि. मी. तथा कचनेर से 175 कि. मी. है।

1/205, प्रोफेसर्स कॉलोनी,
आगरा (उ.प्र.)

नामसाधना

प्रभु का नाम लेने मात्र से कर्म की निर्जरा होती है। कर्म निर्जरा जिससे होती है उसका नाम साधना माना जाता है। इसलिए प्रभु का नाम जपनेवाला भी अपने आप में साधना ही तो कर रहा होता है। दुनिया में रागी-द्वेषी का नाम याद न करके कम से कम यह संकल्प तो ले लेता है कि मैं इतने समय तक मात्र प्रभु का ही नाम लूँगा। यह भी अपने आप में बहुत बड़ा संयम/साधना है। कहा भी है-

कर्मों के बंधन खुलते हैं प्रभु नाम निरंतर जपने से।
भव-भोग-शरीर विनश्वर तव, क्षण-भंगुर लगते सपने से॥

अमरकंटक में एक मठ के साधु आते रहते थे। गुरुदेव के दर्शन करते, कुछ शंका-समाधान करके चले जाते। एक दिन वे एक नये साधु के साथ आये और गुरुदेव को नमस्कार कर पास में ही बैठ गये। चर्चा के दौरान आचार्यश्री ने पूछा- ये कौन हैं? तब वे बोले ये मेरा नया चेला है (हाथ में माला लिये जल्दी-जल्दी मणिका खिसकाते जा रहे थे)। आचार्यश्री ने पूछा-ये क्या कर रहे हैं? तब उन्होंने कहा- ये नाम-साधना कर रहे हैं। हर समय राम के नाम की माला फेरते रहते हैं।

तब आचार्य श्री ने कहा- हाँ, नामसाधना से यह लाभ होता है कि इष्ट के प्रति कितनी आस्था है---। क्योंकि इष्ट के प्रति मजबूत आस्था उनको नमस्कार करने से बनती है और मंत्र को मन के माध्यम से जितना घोंटेंगे उतनी ही मंत्र की शक्ति बढ़ती जाती है- औषधि की तरह। जैसे आयुर्वेद में औषधि को जितनी घोंटो, उतनी उसकी गुणवत्ता बढ़ती है, ऐसा नियम है। राम फेल हो सकते हैं, लेकिन हनुमान कभी फेल नहीं हो सकते। ग्रंथ घोंट-घोंटकर भी पी लो तो भी कल्याण होनेवाला नहीं है, यदि आज्ञासम्यक्त्व नहीं है तो---। प्रभु के प्रति विश्वास होना चाहिए तभी कल्याण होगा।

इस प्रसंग से यह शिक्षा मिलती है कि हमें हमेशा प्रभु का स्मरण करते रहना चाहिए। इस जनम-मरण से बचने के लिए मात्र एक ही साधन है- प्रभु का नाम स्मरण करना। अंत समय, सल्लेखना के समय मुख से प्रभु का नाम निकल जाये, तो बड़ा सौभाग्य समझना। क्योंकि भगवान् का स्मरण मरण को सुन्दर बना देता है।

(अतिशय क्षेत्र बीना बारहा जी, 27 जुलाई 2005)

मुनि श्री कुन्थुसागरकृत 'अनुभूत रास्ता' से साभार

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

णमोकार मंत्र और टॉफी

मुनि श्री क्षमासागर जी : संस्मरण प्रसंग

• सरोजकुमार

यह बात तब की है, जब मुनि श्री क्षमासागर जी इंदौर में अपना चातुर्मास कर रहे थे, याने 1996की। कंचनबाग के समवशरण परिसर में श्राविकाओं के लिए बने भवन की पहली मंजिल पर उनका अस्थायी पड़ाव था। वहीं एक बड़े कक्ष में दोपहर बाद उनसे मिलने और बात करने काफी लोग प्राय: पहुँचते थे। ऐसी ही एक शाम, कक्ष लगभग भरा हुआ था। विभिन्न चर्चाएँ हो रही थीं, कि एक तेरह-चौदह वर्ष का किशोर कक्ष में प्रविष्ट हुआ। उसे इतने शिष्टाचार के लिए भी अवकाश नहीं था, कि वह दीवार के पास से जगह बनाते हुए मुनिश्री के निकट पहुँचे। वह सबके बीच से ही लोगों को ठेलता, धकियाता आगे बढ़ता हुआ मुनिश्री के सामने हाथ जोड़, नमोऽस्तु कहते हुए रुका। उसकी यह अभद्रता लोगों को समझ में नहीं आई, क्योंकि वह दिखने में सुंदर, स्वस्थ और अपने परिधान में किसी अच्छे घर का लग रहा था। मुनिश्री ने उसे आशीर्वाद दिया और वह किशोर एकदम बोला, "मेरी एक जिज्ञासा है।" मुनिश्री ने उससे जिज्ञासा प्रकट करने के लिए कहा। उसने कहा, "मैं यह जानना चाहता हूँ कि अगर मुँह में टॉफी हो, और मैं उसे खा रहा हूँ, ऐसे समय यदि णमोकारमंत्र पढ़ने की भावना हो जाए, तो मुझे क्या करना चाहिए? क्या मुझे तत्काल टॉफी थूक देना चाहिए? यदि थूकने का स्थल न हो, तो क्या मुझे ऐसे स्थान पर जाना चाहिए, जहाँ मैं उसे मुँह से निकाल कर फेंक सकूँ? क्या मुझे उसे खाते रहना चाहिए, कि जब वह समाप्त हो जाए तब मैं कुल्ला करने के बाद णमोकार मंत्र पढ़ूँ?"

किशोर का यह प्रश्न सुनकर सभी उपस्थित लोग अवाक् रह गए। सभी को लगा कि यह तो इस किशोर ने ऐसा प्रश्न उपस्थित कर दिया है, जिसका उत्तर सभी को चाहिए। किसी ने फुसफुसाया, 'टॉफी मुँह में रखे णमोकारमंत्र पढ़ना तो पाप होगा।' किसी ने कहा, 'बिना कुल्ला किए कैसे णमोकार मंत्र कोई पढ़ सकता है?' किसी ने कहा, 'टॉफी-प्रेमी को णमोकारमंत्र की याद ही कैसे आएगी?' पर सब मुनिश्री की ओर देख रहे थे और सभी को उत्सुकता थी, यह जानने की, कि मुनिश्री क्या समाधान व्यक्त करते हैं?

मुनिश्री ने उस किशोर से कहा, कि देखो णमोकार मंत्र पढ़ने में कभी कोई रुकावट नहीं है। अगर टॉफी मुँह में है, और णमोकारमंत्र पढ़ने का मन हो रहा है, और अगर उस समय तुमने नहीं पढ़ा, और टॉफी खत्म करने की प्रतीक्षा की, और फिर कुल्ला करने के लिए पानी खोजने निकले, तब तक हो सकता है, कि णमोकार पढ़ने का जो मन हो रहा है, वह बदल जाए। जो भावना णमोकारमंत्र पढ़ने की पैदा हुई है, वह इतने समय में समाप्त ही हो जाए।

इसलिए उचित यही होगा, कि टॉफी खाते हुए भी यदि णमोकार मंत्र पढ़ने का मन हो आए, तो जरूर पढ़ लेना चाहिए। पर एक बात जरूर ध्यान रखना, कि कहीं ऐसा न हो, कि तुम कभी णमोकारमंत्र पढ़ रहे हो, उस समय तुम्हारा मन टॉफी खाने का हो जाए। जीवन की किसी भी गतिविधि के बीच णमोकारमंत्र का स्वागत है, लेकिन णमोकार मंत्र से भरे हुए क्षणों में जीवन की ऐसी-वैसी गतिविधि के लिए अवसर नहीं होना चाहिए। ऐसा समाधान सुनकर सभी उपस्थितों को लगा, कि इस समाधान ने उनकी भी अनेक जिज्ञासाओं का शमन कर दिया है। यह भी लगा, कि चाहे उन्हें इस किशोर के आने और मुनिश्री तक जाने की शैली आपत्तिजनक लगी हो, पर उसका प्रश्न सटीक था, और अपने प्रश्न को पूछने का साहस प्रशंसनीय।

मनोरम, 37 पत्रकार कॉलोनी, इन्दौर, म.प्र.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

UPHIN/2006/16750

असहिष्णुता और आतंकवाद मानव-समाज के हित में नहीं

आचार्य श्री विद्यासागर जी का आह्वान

रामटेक (नागपुर, महाराष्ट्र)। देश भर में बढ़ रही आतंकवादी घटनाओं तथा धार्मिक असहिष्णुता पर गहरी चिंता जताते हुए प्रसिद्ध जैनसंत आचार्य विद्यासागर जी ने कहा कि दुनिया भर में अहिंसा-दूत के रूप में चर्चित भारत के लिए इस तरह की घटनायें कतई शोभाजनक नहीं मानी जा सकती हैं। जरूरत है अहिंसा तथा सांप्रदायिक सौहार्द के प्राचीन भारतीय मूल्यों को समाज में, विशेष तौर पर युवा पीढ़ी में पुन: स्थापित करने पर बल देने की। आचार्य श्री विद्यासागर जी यहाँ '**मूकमाटी-मीमांसा**' के विमोचन समारोह में विशाल श्रद्धालुओं को संबोधित कर रहे थे। इस अवसर पर महामहिम राष्ट्रपति श्रीमती प्रतिभा पाटिल ने समारोह की सफलता के लिए अपना शुभकामना संदेश दिया। गृहमंत्री श्री शिवराज पाटिल, पूर्व उपराष्ट्रपति श्री भैरोसिंह शेखावत, भारतीय जनता पार्टी (भाजपा) के अध्यक्ष श्री राजनाथ सिंह सहित अनेक विशिष्ट राजनेताओं ने अपने संदेशों के जरिए आचार्य श्री विद्यासागर जी को अपनी शुभकामनाएँ दीं। श्री सिंह ने अपने शुभकामना-संदेश में कहा कि आज जब चारों ओर असहिष्णुता और हिंसा का बोलबाला है, ऐसे में भगवान् महावीर के सहिष्णुता और अहिंसा के संदेश प्रासंगिक हैं। उन्होंने कहा कि आचार्यश्री ने सहिष्णुता एवं अहिंसा के संदेश को न सिर्फ अपने जीवन में उतारा, बल्कि वे स्वयं इन जीवनमूल्यों के प्रेरणापुंज के रूप में समाज को लाभान्वित करते आ रहे हैं। श्री शेखावत एवं श्री पाटिल ने अपने संदेश में आचार्य विद्यासागर जी को धार्मिक सहिष्णुता का प्रतीक बताते हुए कहा कि उनकी धर्मसभाओं में नैतिक एवं धार्मिक मूल्यों के साथ-साथ राष्ट्रभक्ति का मंत्रोच्चार होता है, जिसके चलते उसमें जनसैलाब उमड़ पड़ता है। इस पुस्तक के संपादक स्वर्गीय प्रभाकर माचवे तथा आचार्य राममूर्ति समेत कई विद्वानों को सम्मानित किया गया है। श्री माचवे को मरणोपरांत सम्मानित किया गया है।

आचार्यश्री एवं उनके तपस्वी संघ के सान्निध्य में हुए इस समारोह में श्रद्धालुओं के अलावा बड़ी तादाद में विद्वानों ने हिस्सा लिया। गौरतलब है कि **मूकमाटी-मीमांसा** आचार्य श्री द्वारा लिखित महाकाव्य **मूक माटी** पर लगभग 300 विद्वानों के आलोचनात्मक लेखों का संग्रह है। ग्रन्थ तीन खण्डों एवं 1800 पृष्ठों में समाहित है। ग्रंथ पर देश के अनेक शोधार्थी पी-एच. डी. तथा तीन डी. लिट् कर रहे हैं।

हिंदी, संस्कृत तथा प्राकृत के प्रकाण्ड विद्वान् आचार्य श्री विद्यासागर जी विभिन्न विषयों पर अनेक पुस्तकें तथा महाकाव्य लिख चुके हैं, जिसमें **मूक माटी** काफी सुर्खियों में रही है। पुस्तक में रूपक के जरिए बताया गया है कि पददलित माटी को कुम्हार अपने पुरुषार्थ तथा दृढ़ इच्छाशक्ति से तराश कर मंदिर के कलश का रूप दे सकता है, और समाज में सभी को समानता पर लाया जा सकता है।

'जिनेन्दु' (साप्ताहिक) 12 अक्टूबर 08, अहमदाबाद से सभार

स्वामी, प्रकाशक एवं मुद्रक : रतनलाल बैनाड़ा द्वारा एकलव्य ऑफसेट सहकारी मुद्रणालय संस्था मर्यादित, 210, जोन-1, एम.पी. नगर, भोपाल (म.प्र.) से मुद्रित एवं 1/205 प्रोफेसर कॉलोनी, आगरा-282002 (उ.प्र.) से प्रकाशित। **संपादक** : रतनचन्द्र जैन।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org